प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

मार्च, 2017

मेला विशेषांक

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110 012

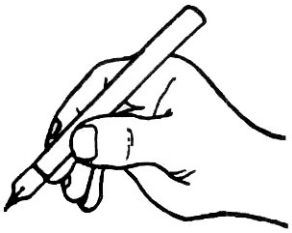

सम्पादकीय

किसान भाइयों को नमस्कार, अंग्रेजी कैलेंडर में वर्ष की शुरूआत जनवरी से होती है जबकि भारतीय कैलेंडर जो संवत्सर कैलेंडर कहलाता है, में नव वर्ष चैत से शुरू होता है। इस कैलेंडर की वर्ष और मास प्रणाली, जिसमें मास चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ होते हैं, पर गौर करें तो यह भारतीय कृषि के लिहाज से अधिक उपयुक्त है। इसका नववर्ष सही मायनों में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के लिए नववर्ष होता है। कई मौसम वैज्ञानिकों ने भी अनुभव किया है कि यदि मौसम की भविष्यवाणी करने के लिए सुपर कंप्यूटर के डेटा के साथ-साथ नक्षत्रों की गणना भी देखी जाए, तो यह अधिक सटीक बैठती है। भारत का प्राचीन खगोल विज्ञान आज भी आधुनिक वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित करता है।

हाल ही में सरकार ने किसानों के लिए नई कृषि बीमा योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, राष्ट्रीय कृषि बाजार जैसी कल्याणकारी योजनाएं प्रारंभ की हैं, साथ ही किसान सुविधा जैसे मोबाइल ऐप की शुरूआत भी की है। नई फसल बीमा योजना को सरल बनाया गया है और आशा है कि यह मौसम की मार से किसानों को राहत प्रदान करेगी।

योजनाएं अनेक हैं। सभी अपने कल्याणकारी उद्देश्यों के साथ बनती हैं, लेकिन देखा जाता है कि इनका पूरा लाभ छोटे या सीमांत किसानों तक नहीं पहुँच पाता। क्या कारण है कि योजनाएं अपनी तमाम नेकनीयती के बावजूद छोटे और दूर-दराज के किसानों को लाभ नहीं दे पातीं, जो असल मायनों में वंचित हैं और जिन्हें इनकी सबसे ज्यादा जरूरत है।

इसका मुख्य कारण यह है कि इन योजनाओं से लाभ लेने के लिए अनेक प्रकार की औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं। प्रत्येक योजना की अपनी विशेषताएं होती हैं, उससे लाभ लेने के लिए शर्तें और प्रक्रियाएं बनी होती हैं। हमारे देश के छोटे किसानों को, जो संसाधन विहीन हैं, उसके लिए अपने रोजमर्रा के जीवन का निर्वाह करना ही मुश्किल होता है। उसकी समस्त ऊर्जा जीवन संघर्ष में लगी होती है, और इसके इतर किसी अन्य प्रक्रिया या जटिलता को देखने-समझने की क्षमता नहीं बचती। नतीजा यह होता है कि वह सभी सरकारी लाभों से वंचित रह जाता है। वस्तुस्थिति अनुमान से भी ज्यादा विकट है। जिस किसान के पास एक बैंक खाता नहीं है, जो बैंक जाने का साहस नहीं जुटा पाता, जो किसी सरकारी कार्यालय में जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, वह बीमा या अनुदान का लाभ कैसे लेगा? मुद्दा यह है कि एक सीमांत किसान इन योजनाओं का लाभ उठाने लायक सशक्त कैसे बने।

हमारा भारत बदलकर ''डिजिटल इंडिया'' हो रहा है। पूरी दुनिया डिजिटल क्रांति पर सवार होकर तरक्की के मार्ग पर सफर कर रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि प्रशासन और पारदर्शिता के लिए डिजिटल युग एक वरदान है। हमारा यह कर्तव्य भी बनता है कि देश का सीमांत किसान भी इस तरक्की के राह पर कदम से कदम मिलाकर चले। यह तभी संभव होगा जब वह बुनियादी तौर पर शिक्षित और सजग हो। किसान को इतना सशक्त होना होगा

कि वह देश में अपनी भागीदारी पहचान सके। अपने लिए लाभकारी और उपयुक्त योजना की स्वयं पहचान कर सके, उसकी शर्तों को समझ सके, उसकी औपचारिकताओं को पूरा कर सके। सीमांत किसान देश का जरूरी अंग है, अतः देश की बुनियादी जरूरत उनके सशक्तीकरण की है।

किसान भाइयों, गर्मी दस्तक दे रही है। सूर्य देवता धीरे-धीरे अपना तेज बढ़ाते जा रहे हैं। किसान भाई चाहें तो इस तेज धूप की शक्ति का उपयोग अपने पक्ष में कर सकते हैं। यदि जायद की फसल न लेनी हो, तो मई-जून में खेत की गहरी जुताई करके छोड़ देनी चाहिए। यह गर्मी भूमि में छिपे कीटों और रोगकारकों का नाश कर सकती है। यदि मेंड़ों को सिंचाई के बाद प्लास्टिक पलवार से दबा दें, नमी को न निकलने दें तो इससे उत्पन्न होने वाली गर्म भाप की ऊष्मा से रोगीकारकों के साथ-साथ खरपतवारों के बीज भी नष्ट हो सकते हैं और खेत निरोगी बनकर अगले मानसून के स्वागत के लिए तैयार हो सकता है। ध्यान दें कि मानसून की वर्षा बेशकीमती होती है, और जल संरक्षण के तरीकों को अपनाना जरूरी है, ताकि सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध रहे। कोशिश करें कि खेत का पानी खेत में, गांव का पानी गांव में ही रहे। बहते हुए पानी को रूकना सिखाओ, रूके हुए पानी को बहना सिखाओ।

आज का किसान शिक्षित और सशक्त बनेगा और इस विज्ञापनबाजी के दौर में उचित-अनुचित का भेद करने के लिए सक्षम बनेगा, इन्हीं आशाओं के साथ 'प्रसारदूत' के इस अंक में समसामयिक आलेखों को शामिल किया गया है। इसमें फसलों में पोषक तत्व प्रबन्धन, सामाजिक सुरक्षा के लिए सरकारी योजनायें, कृषि में प्लास्टिक की उपयोगिता, परवल की खेती, जैविक कृषि उत्पाद विपणन आदि पर आलेख दिये गये है 'प्रसार दूत' का यह अंक किसान भाइयों के लिए लाभप्रद होगा। आपको यह अंक कैसा लगा, पत्र द्वारा हमें सूचित करें।

संपादक

मार्च 2017

प्रसार दूत

वर्ष 22 | 2017 | अंक-1

संरक्षक

डॉ. जीत सिंह सन्धू
कार्यवाहक निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. बी.के. सिंह

संपादक मंडल

डॉ. एन.वी. कुंभारे
डॉ. कन्हैया सिंह
डॉ. आर.एस. बाना
डॉ. नफीस अहमद
डॉ. हरीश कुमार
श्री के.एस. यादव

तकनीकी सहयोग

श्री राम तौल
डॉ. वी.एस. सोलंकी
श्री आनन्द विजय दुबे
श्री सुरेन्द्र पाल
श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली - 110012
फोन: 011-25841670
एग्रीकॉम: 1800118989 (टोल फ्री)
ई-मेल: incharge_atic@iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

१. मार्च-अप्रैल में शाकीय फसलों का प्रबन्धन १
२. फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन ३
३. सब्जी उत्पादन में बोरॉन का महत्व ७
४. सामाजिक सुरक्षा के लिए सरकारी योजनाएं १०
५. आम की जैविक खेती में एकीकृत कीट प्रबंधन १४
६. कृषि में प्लास्टिक की उपयोगिता १७
७. परवल की खेती २१
८. पोषण से सुरक्षा: सबसे अहम जरूरत एवं कुपोषण से बचने के उपाय २७
९. सामुदायिक रेडियो: वर्तमान स्थिति एवं प्रासंगिकता ३४
१०. जैविक उत्पाद विपणन कर अधिक लाभ अर्जित करने के तरीके ३७
११. मिर्च में लगने वाले रोगों का समेकित प्रबन्धन ४३
१२. सामाजिक वानिकी हेतु उपयुक्त औषधीय पौधा गिलोय ४८
१३. एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन (आई.पी.एम.) ५१

वार्षिक शुल्क ₹ 80/- मनीआर्डर द्वारा | एक प्रति मूल्य ₹ 20/-

मार्च-अप्रैल में शाकीय फसलों का प्रबन्धन

आर.के. यादव, हर्षवर्धन चौधरी एवं भोपाल सिंह तोमर
शाकीय विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.सं.-पुसा, नई दिल्ली

जायद का मौसम गर्मी वाली सब्जी फसलों की खेती के लिए काफी अनुकूल होता है। मार्च-अप्रैल कें दौरान विभिन्न सब्जी फसलों में की जाने वाली सस्य क्रियाओं एवं फसल प्रबन्धन का विवरण निम्नलिखित है।

- मार्च का प्रथम पखवाड़ा भिन्डी, लोबिया, चौलाई, कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे लौकी, खीरा, करेला, तरबूज, खरबूज इत्यादि के बीज की बुवाई का उचित समय है।
- मिर्च, बैंगन इत्यादि के पौधों की रोपाई का भी उचित समय है।
- जिन खेतों में आलू, मटर, गोभी इत्यादि फसल चल रही है उनमें अभी भी मिर्च, बैंगन एवं कद्दूवर्गीय सब्जियों की पौध नाइलोन की जाल घर में प्रोट्रे इत्यादि में उगाकर मार्च के अन्त तक रोपाई की जा सकती है।
- बुवाई या रोपाई के लिए उपयोग किए जानेवाले खेत में बुवाई या रोपाई के 15 दिन पहले सड़ी हुई गोबर की खाद 25 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में मिला दें अगर हो सके तो गोबर की खाद में ट्राइकोडर्मा (5 किग्रा/ हेक्टेयर) को भी मिला दें।
- गोबर की खाद के अलावा खेत में आवश्यकतानुयार जैविक खादों, सूक्ष्म पोषक तत्वों, नीम की खली इत्यादि को भी मिला दें।
- अन्तिम तैयारी से पहले खेत में रसायनिक खादों जैसे नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटास की पूरी मात्रा खेत में मिलाकर खेत तैयार कर लें।
- खेत को बुवाई या रोपाई से पहले अच्छी तरह से समतल करके आवश्यकतानुसार सिचांई की नालियां बना लें जिससे पूरे खेत की सिचाई अच्छी प्रकार से की जा सके और कहीं भी जलभराव या पानी की कमी न रह सके।
- कद्दूवर्गीय फसलों में खाद एवं उर्वरकों को जिन नालियों में बीज या पौधे लगाना है उनमें ही प्रयोग करें।
- बुवाई के 3-4 दिन पहले पेन्डीमीथेलीन (स्टाम्प) नामक खरपतपार नाशी की 3 मिली/ लीटर पानी की दर से घोल बनाकर गीली नालियों में छिड़काव करने से शुरूआत में खरपतवारों से बचाव हो जाता है।
- बीज को बोने से पहले उस पर रसायनिक दवाओं (थीरम 3 ग्राम/ किग्रा बीज) या जैविक दवाओं जैसे ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम/ किग्रा बीज से उपचारित कर लें। इसी प्रकार रोपाई वाली फसलों की पौधों को रोपाई से पहले वैबीस्टीन के घोल (1 ग्राम /लीटर) में 30 मिनट तक भिगोकर तथा 3-4 घंटे तक छाया में सुखाकर बुवाई करें।
- भिन्डी इत्यादि के बीजों को बुवाई से पहले 12 घंटे तक पानी में भिगाए एवं उतने ही समय तक गीले

कपड़े में रखे और जब बीजों मे हल्का अंकुरण आ जाए तो बुवाई करें।

- बीजों की बुवाई लाइनों में जमीन में प्र्याप्त नमी की अवस्था में करें।
- कद्दूवर्गीय फसलों के बीजों को नालियों के दोनों भीतरी किनारों पर लगाना चाहिए। जिससे बेल की बढ़वार नालियों के बीच के सूखे स्थान पर हो।
- कददूवर्गीय फसलों में यदि पौधे जड़ से सुखने लगें (फयुजेरियम विल्ट) तो कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम एवं मैंन्कोजेब 1 ग्राम के मिश्रण को प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधे की जडों पर छिड़काव (ड्रेचिंग) करें।
- करेला, खीरा, खरबूज इत्यादि में फल मक्खी से बचाव के लिए फेरोमोन ट्रैप (मिथाइल यूजीनाल) को लगायें।
- कद्दूवर्गीय फसलों का अधिक एवं गुणवत्ता युक्त उत्पाद लेने के लिए मचान बनाकर बेलों को चढायें।
- सब्जियां जब भली भांति विकसित हो जाए एवं नरम हो तभी समय-समय पर तुराई करते रहने से बाजार में दाम अच्छा मिलता है एवं नये फल भी जल्दी आते हैं।
- विपणन के लिए सब्जी उत्पाद को उनके आकार एवं रंग के अनुसार वर्गीकरण करके तथा सम्भव हो तो लिफाफा बन्दी करके बेचें।
- प्याज, गोभी वर्गीय एवं कद्दूवर्गीय फसलों में बीज उत्पादन के लिए फूल आने पर खेत में मधुमक्खी के छत्तों को रखें इससे शहद उत्पादन के साथ-साथ परागण अच्छा होने से कद्दूवर्गीय फसलों में फल उत्पादन एवं प्याज, गोभी, गाजर इत्यादि में बीज उत्पादन में बढोत्तरी होगी।

तालिका १: जायद के मौसम में उगाई करके उगायी जाने वाली प्रमुख सब्जियों का विवरण:

फसल	प्रजाति
बैंगन	पूसा उत्तम, पूसा श्यामला, पूसा कौशल, पूसा हाइब्रिड-5, पूसा हाइब्रिड - 9
मिर्च	पूसा ज्वाला, पूसा सदाबहार
भिन्डी	पूसा ए-4, परभनी क्रान्ति, पी-8
चौलाई	पूसा लाल चौलाई, पूसा किरण
लोबिया	पूसा सुकोमल, काशी कंचन
लौकी	पूसा नवीन, पूसा संतुष्टी, पूसा हाइब्रिड-3
करेला	पूसा औषधि, पूसा विशेष, पूसा दो मौसमी, पूसा हाइब्रिड-2
खीरा	पूसा उदय
तरबूज	शुगर बेबी, अर्का मुत्थु, अर्का मधुरा (बीज रहित)
खरबूज	पूसा मधुरस, काशी मधु, हरा मधु
टिण्डा	अर्का टिण्डा, पंजाब टिण्डा
धारीदार तोरई	पूसा नूतन
चिकनी तोरई	पूसा स्नेहा
सीताफल	पूसा विश्वास, पूसा हाइब्रिड-1

फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन

राजेन्द्र कुमार यादव[1], राजेश कुमार शर्मा[2], मालूराम यादव[2] एवं विनोद कुमार शर्मा[1]

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग

[1]भा.कृ.अनु.परिषद-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

[2]भा.कृ.अनु.परिषद-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

फसलें अच्छी बढवार और भरपूर उत्पादन के लिए जमीन से अपनी खुराक के रूप से 14 पोषक तत्व लेती है। जबकि 3 पोषक तत्व हवा तथा जल से मिल जाते है। जमीन में इन सभी 14 पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए। इन सभी पोषक तत्वों में से यदि एक भी पोषक तत्व की अधिकता या कमी हो जाये तो जमीन में फसलों की खुराक असंतुलित हो जाती है। इसलिए इन सभी आवश्यक पोषक तत्वों की समानुपातिक मात्रा को बनाये रखने के लिए भूमि में खाद एवं उर्वरक डालने की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार जमीन में पोषक तत्वों की आपूर्ति कर खुराक को संतुलित किया जाता है।

पोषक तत्वों की कमी के लक्षण

नाइट्रोजनः- पुरानी पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है। अधिक कमी होने पर पत्तियां भूरी होकर सूख जाती है।

फॉस्फोरसः- पत्तियों या तनों पर लाल या बैंगनी रंग आ जाता है। जड़ों के फैलाव में कमी होती है।

पौटेशियमः- पुरानी पत्तियों के किनारे पीले पड़ जाते हैं, और पत्तियां बाद में भूरी झुलसी हुई हो जाती है।

सल्फरः- नई पत्तियों का रंग हल्का हरा एवं पीला पड़ने लगता है। दलहनी फसलों में गांठे कम बनती है।

कैल्शियमः- नई पत्तियां पीली अथवा गहरी हो जाती है। पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है।

मैग्नीशियमः- पुरानी पत्तियों की नसें हरी रहती हैं लेकिन उनके बीच का स्थान पीला पड़ जाता है। पत्तियां छोटी व सख्त हो जाती हैं।

जिंकः- पुरानी पत्तियों पर हल्के पीले रंग के धब्बे दिखते हैं शिरा के दोनों और रंगहीन पट्टी जिंक की कमी का लक्षण है।

आयरनः- नई पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग पीला हो जाता है। अधिक कमी पर पत्तियां हल्की सफेद हो जाती हैं।

कॉपरः- पत्तियों की शिराओं की चोटी पर छोटी एवं मुड़ी हुई हल्की हरी पीली हो जाती हैं।

मैंग्नीजः- नई पत्तियों की शिरायें भूरे रंग की तथा पत्तियाँ पीले से भूरे रंग में बदल जाती हैं।

बोरॉनः- नई पत्तियां गुच्छों का रूप ले लेती हैं, डंठल, तना एवं फल, फटने लगते हैं।

मोल्बिडेनमः- पत्तियों के किनारे झुलस या मुड़ जाते हैं या कटोरी का आकार ले सकते हैं।

पोषक तत्वों की असंतुलित मात्राः मिट्टी एवं फसल पर प्रभाव

जमीन के स्वास्थ्य में गिरावटः- पोषक तत्वों की असंतुलित मात्रा एवं एक ही तरह के उर्वरकों का लगातार इस्तेमाल करते रहने के कारण भूमि में लवणीयता,

क्षारीयता जैसी आदि समस्याऐं उत्पन्न हो जाती है। भूमि की उत्पादकता में गिरावट आ जाती है और जमीन की भौतिक एवं रासायनिक दिशा बिगड़ जाती है।

फसलों के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभावः- कुछ विशेष पोषक तत्वों की कमी हो जाने पर उनकी कमी के लक्षण फसलों पर बीमारी के रूप में दिखाई देते है।

गंधकः- गंधक तत्व की कमी होने पर फसल में पीलिया रोग हो जाता है। इस रोग के होने पर नई पत्तियां आकार में छोटी व पीली पड़ जाती है।

जस्ताः- मक्का में जस्ते की कमी होने पर पत्तियों की शिराओं के बीच पीली धारियां पड़ जाती हैं जो बाद में सफेद रंग की हो जाती है।

लोहाः- पौधों में लोहे की कमी के लक्षण सबसे पहले नई पत्तियों पर दिखाई देते है। नई पत्तियां पीली सफेद अथवा सफेद रंग की हो जाती है।

संतुलित खुराक की पूर्ति के उपाय

१. **खेत की मिट्टी की जांच करायेंः**- फसलों को संतुलित खुराक देने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी की जांच आवश्यक है क्योंकि फसल को कितनी मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता हैं तथा भूमि में इन पोषक तत्वों की कितनी उपलब्धता है। इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए ही मिट्टी जांच कराना आवश्यक है।

२. **खुराक की पूर्ति सभी उपलब्ध संसाधनों का समेकित प्रयोग करेंः**- इस बात को समझने के लिए आवश्यक है कि किसी एक पोषक तत्व की पूरी मात्रा की पूर्ति केवल एक साधन द्वारा नहीं करनी है। उदाहरण के लिए नत्रजन तत्व की पूर्ति केवल यूरिया डालकर भी की जा सकती हैं लेकिन ऐसा करने से भूमि के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर होता हैं और धीरे-धीरे जमीन की पैदावार क्षमता कम हो जाती है। इसलिए जमीन की पैदावार क्षमता को बढाना हैं तो फसल की खुराक की पूर्ति के लिए हमें उपलब्ध कार्बनिक, अकार्बनिक तथा जैव संसाधनों को तर्कसंगत तरीके से उपयोग में लाना है।

(अ) जैविक खादों का प्रयोग

जैविक खादों का उपयोग करने से फसलों को सभी पोषक तत्व मिल जाते हैं, मृदा संरचना अच्छी हो जाती हैं तथा मिट्टी में लाभकारी जीवों की संख्या बढ जाती हैं जो जमीन की उपजाऊ शक्ति बढाने में मदद करते है। मुख्य रूप से जैविक खादों के लिए निम्नलिखित पदार्थों को शामिल किया जाना चाहिए।

१. **हरी खादः**- हरी खाद के रूप में ढेंचा, सनई, मूंग, ग्वार आदि फसलों को हरी अवस्था में खेत में दबा देते हैं और पानी भरकर सड़ने देते हैं।

२. **गोबर खाद व कम्पोस्ट खादः**- कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए निम्नलिखित तरीकों में से, किसान अपनी सुविधानुसार अपनाकर काम में ले सकते है।

सुपर कम्पोस्टः- इस खाद को बनाने के लिए निश्चित माप 15 x 6 x 3 फीट का गड्ढा तैयार करके उसमें विधिनुसार फसल अवशेष, घासफूस व गोबर को अच्छी प्रकार मिलाकर भर दें। प्रति गड्ढा 2 कट्टे सिंगल सुपर फॉस्फेट डालें। नमी की आवश्यक मात्रा बनाये रखने के लिए समय-समय पर पानी का छिड़काव जरूरी है।

नेडेप कम्पोस्टः- इस विधि में गड्ढे के स्थान पर जमीन के ऊपर ईटों का टांका बनाया जाता है। टांके के अंदर हवा का आवागमन बनाये रखने के लिये दीवार में छिद्र छोड़े जाते हैं।

वर्मी-कम्पोस्टः- केंचुओं से तैयार खाद वर्मी-कम्पोस्ट कहलाती है। केंचुए की ईपीगीज प्रजाति जीवांश पदार्थ को खाकर अच्छी कम्पोस्ट खाद बनाती है।

प्रोम जैविक खादः- प्रोम जैविक खाद बनाने में गोबर की खाद तथा रॉक फॉस्फेट पाउडर काम में लिया जाता है। फसलों को फॉस्फोरस तत्व की आपूर्ति के लिए उपयोग में लिये जाने वाले उर्वरकों जैसे सुपर फॉस्फेट व

डी.ए.पी. के विकल्प के रूप में प्रोम को अपनाया जा सकता है।

खली:- तेल वाली फसलों से तेल निकालने के बाद खलियों का इस्तेमाल खाद के रूप में किया जा सकता है। जैसे नीम की खली, अरण्डी की खली, मूंगफली की खली, करंज की खली, रतनजोत की खली आदि।

(ब) जैव उर्वरकों का प्रयोग (बायो फर्टिलाइजर्स)

नत्रजन तत्व की पूर्ति हेतु

राइजोबियम कल्चर:- दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम कल्चर का प्रयोग करें। एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए 200 ग्राम के तीन पैकेट से बीज उपचारित करें।

एजेटोबेक्टर एवं एजोस्पाइरीलम कल्चर:- बिना दाल वाली सभी फसलों के लिए उपरोक्तानुसार काम में लाऐं। रोपाई वाली फसलों के लिए, 2 पैकेट कल्चर को 10 लीटर पानी के घोल में पौधे की जड़ों को 15 मिनट तक डुबोकर रखने के बाद रोपाई करें।

फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने हेतु

पीएसबी कल्चर:- रासायनिक उर्वरकों द्वारा दिये गये फास्फोरस का बहुत बड़ा भाग जमीन में अघुलनशील होकर फसलों को मिल नहीं पाता हैं। पीएसबी कल्चर फास्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध कराता है। बीजोपचार उपरोक्तानुसार करें या 2 किलों (10 पैकेट) कल्चर को 100 किलो गोबर की खाद में मिलाकर खेत में मिला देवें।

वैम कल्चर:- वैम कल्चर फॉस्फोरस के साथ साथ दूसरे सभी तत्वों की उपलब्धता बढा देता है। बीजोपचार उपरोक्तानुसार करें।

(स) अकार्बनिक पदार्थ एवं रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग

पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु मुख्य रूप से उपयोग में आने वाले उर्वरक निम्नलिखित हैं -

उर्वरक का नाम	उपस्थित पोषक तत्व	उपयोग का तरीका
यूरिया	नत्रजन 46 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में डाले तथा खड़ी फसल में बिखेरकर दें, या कमी के लक्ष्ण दिखाई देने पर 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।
कैन	नत्रजन 26 प्रतिशत कैल्शियम 20 प्रतिशत	बुवाई के समय कूडों में डालें तथा खड़ी फसल में बिखेरकर दें।
अमोनियम सल्फेट	नत्रजन 20.6 प्रतिशत सल्फर 23 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
अमोनियम फॉस्फेट सल्फेट	नत्रजन 16 प्रतिशत फॉस्फोरस 20 प्रतिशत सल्फर 13 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
एस.एस.पी.	फॉस्फोरस 16 प्रतिशत सल्फर 11 प्रतिशत कैल्शियम 21 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
डीएपी	फॉस्फोरस 46 प्रतिशत नत्रजन 20 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
नाइट्रोफॉस	फॉस्फोरस 20 प्रतिशत नत्रजन 20 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
म्यूरेट ऑफ पोटाश	पोटाश 60 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
पोटाशियम सल्फेट	पोटाश 50 प्रतिशत सल्फर 17.5 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
एनपीके	नत्रजन 12 प्रतिशत फॉस्फोरस 32 प्रतिशत पोटाश 16 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
जिंक सल्फेट हेप्टाहाईड्रेट	जिंक 21 प्रतिशत सल्फर 10 प्रतिशत	25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय खेत में मिलाकर दें या खड़ी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूना घोल का छिड़काव करें।

जिंक चिलेट	जिंक 12 प्रतिशत	10 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय खेत में प्रयोग करें।
फैरस सल्फेट	लोहा 19 प्रतिशत सल्फर 10.5 प्रतिशत	15 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय खेत में मिलायें या सल्फर खडी फसल में 0.4 प्रतिशत फेरस सल्फेट + 0.2 प्रतिशत चूना घोल बनाकर छिड़काव करें।
कॉपर सल्फेट	तांबा 24 प्रतिशत सल्फर 12 प्रतिशत	खड़ी फसल में 0.2 प्रतिशत कॉपर सल्फेट + 0.1 प्रतिशत चूना घोल बनाकर छिड़काव करें।
बोरेक्स	बोरोन 10.5 प्रतिशत	बोरेक्स पाउडर बुवाई के समय 5 से 10 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
प्राकृतिक पदार्थ		
जिप्सम	सल्फर 13 प्रतिशत	कैल्शियम 19 प्रतिशत प्रयोग करें। बुआई के समय 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
रॉक फास्फेट	फॉस्फोरस 18 प्रतिशत	देशी खाद के साथ सड़ाकर बुवाई से पूर्व खेत में डालें।

□□

सब्जी उत्पादन में बोरॉन का महत्व

शिल्पा देवी, अरविन्द नागर एवं राहुल कुमार
शाकीय विज्ञान संभाग
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

पौधों की सामान्य वृद्धि और उनके विकास हेतु सत्रह पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें कुछ तत्व ऐसे होते हैं, जिनका उपयोग पौधे अधिक मात्रा में करते हैं, इन्हें प्रमुख या प्राथमिक पोषक तत्व कहते हैं। कुछ तत्वों की अपेक्षाकृत कम मात्रा से ही पर्याप्त विकास हो जाता है, इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं। पोषक तत्वों की कमी या अधिकता दोनों का सब्जियों की उपज और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बोरोन एक सूक्ष्म पोषक तत्व है। इसका पौधों के द्वारा बहुत ही कम (अर्थात 0.01-1.0 पीपीएम) मात्रा में प्रयोग किया जाता है।

सब्जियां अपनी वृद्धि के लिए मिट्टी, जल तथा वायु से विभिन्न तत्वों को अवशोषण करती हैं। पोषक तत्व पौधे को जैविक तथा अजैविक रोगों से रक्षा करने के साथ-साथ खनिजों के हानिकारक प्रभावों को आयनिक संतुलन के द्वारा कम कर देते हैं। अधिकांश मृदाओं में बोरॉन का मुख्य स्रोत ट्रमलाइन खनिज है। जिसमें 3-4 प्रतिशत बोरॉन पाया जाता है। यह अपक्षयण प्रतिरोधी खनिज है, अतः इसमें बोरॉन मंद गति से मुक्त हो पाता है। बोरॉन की कमी की बढ़ती हुई समस्या से यह संकेत मिलता है कि सघन-कृषि प्रणाली में पौधों की अवश्यकता के अनुरूप बोरॉन की पूर्ति करने में यह खनिज सक्षम नही है। पौधों के लिए सुलभ बोरॉन की अधिकांश मात्रा मृदा-जैवांश के विघटन से प्राप्त होती है। कुछ मृदा-कणों की सतह पर अधिरोषित एवं अवक्षिप्त अंश से भी बोरॉन सुलभ हो पाता है।

बारीक कणाकार वाली मृदाओं में हल्के कणाकार वाली मृदा की तुलना में उपलब्ध बोरॉन की मात्रा अधिक पायी जाती है। बहुधा आर्द्र क्षेत्रों की मृदाओं में बोरॉन की हानि नीक्षालन द्वारा हो जाती है। जिससे उपलब्ध बोरॉन की मात्रा में कमी हो जाती है। शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों वाली लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में जटा नीक्षालन सीमित होता है, वहां बोरॉन की विषालुता एक आम समस्या है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर बोरॉन पोषक तत्व की विस्तृत चर्चा इस लेख में की गयी है।

क्यों जरूरी है बोरॉन?

बोरॉन एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है, जो पौधों में बोरिक अम्ल (H_3BO_3) के रूप में अवशोषित होने के साथ ही पौधों के सम्पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण कार्य करता है। बोरॉन कार्बोहाइड्रेट को पादप कोशिका में संग्रहित करने का कार्य करता है, अतः प्रकाश संश्लेषण और पौधों की वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन उपापचयन में भी बोरॉन महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। पत्तियों में शर्करा स्थानांतरित करने में बोरॉन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल के संश्लेषण तथा फॉस्फेट के उपयोग और कोशिका भिति में पेक्टिन पदार्थ के निर्माण में सहायक होता है। यह सब्जियों में पोटैशियम-कैल्शियम अनुपात को नियमितता प्रदान करता है। बोरॉन अनेक एंजाइमों जैसे कैटालेज, ऑक्सीडेज, परॉक्सीडेस और

सुक्रेज की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। बोरॉन की कमी प्राय: फिनोलिक अम्ल के अधिक संश्लेषण के बाद ही देखी जाती है। बोरॉन की कमी होने से टमाटर की पत्तियों में शर्करा का संचयन अधिक होता है। इसके अभाव से परागकण और परागनली की वृद्धि पर भयंकर कुप्रभाव पड़ता है। जिसके कारण सब्जियों की पैदावार में कमी होती है।

सब्जियों में बोरॉन कि कमी के लक्षण

- बोरॉन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं।
- बोरॉन की कमी से सब्जियों के वर्धनशील अग्रभाग के ऊतक मर जाते हैं। पत्तियां मोटी हो जाती हैं, जो कभी-कभी मुड़ जाती हैं और काफी सख्त हो जाती हैं।
- बोरॉन की अधिक कमी होने पर पत्तियां सूख जाती हैं।
- जड़ वाली फसलों (जैसे चुकन्दर) में 'ब्राउन हार्ट' नामक बीमारी हो जाती है, जिसमें जड़ के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते हैं।

सब्जियों में बोरॉन कि कमी की पहचान

आलू: बोरॉन की कमी होने की स्थिति में पौधों की वृद्धि रूक जाती है और शीर्षस्थ प्ररोहों में अतिरिक्त एवं असामान्य वृद्धि हो जाती है। कंद का आकार असामान्य और छोटा होता है।

मूली: मूली में बोरॉन की कमी होने से प्रारंभिक अवस्था में पत्तियां नीली हरी हो जाती हैं। पत्तियां सतह से सिकुड़ने लगती हैं और असामान्य तरीके से बढ़ती हैं। पहले नवजात बाद में सभी पत्तियों का ऊपरी भाग 'हुक' की तरह दिखाई देता है। जड़ में दरारें पड़ जाती हैं और वृद्धि रूक जाती है तथा जड़ों को खड़ा काटने पर बीच में काले रंग का खाली स्थान दिखाई देता है। परागकण की क्रिया भी सुचारू रूप से नहीं होती है।

फूलगोभी: बोरॉन की कमी होने पर फूलगोभी की उपज में करीब 25 से 35 प्रतिशत तक कमी आती है। फूलगोभी का सफेद रंग बादामी रंग का हो जाता है। तने और फूल का मध्य भाग पानी जैसा चिपचिपा हो जाता है, यही बाद में भूरे चित्तीदार रंग में बदल जाता है। तना खोखला हो जाता है। पत्तियों में सिकुड़न, पूर्ण सतह का खुरदरा होना और पत्तियों का छोटा होना, इसकी कमी के लक्षण हैं।

मटर: बोरॉन की कमी से दलहनी फसलों में शिखर कलिकाओं की वृद्धि रूक जाती है। मटर की जड़ें छोटी और मोटी हो जाती हैं और सिरे लंबे हो जाते हैं।

टमाटर: टमाटर की पत्तियों के शीर्ष पीले होने लगते हैं तथा शिराएं गुलाबी - नारंगी रंग की हो जाती हैं। फल धब्बेदार और कड़ा हो जाता है। फल समय से पहले ही पकने लगता है, जिससे फलों की स्वस्थता व गुण भी खराब हो जाते हैं। इस तत्व की कमी से फल के कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम हो जाती है।

सेलेरी का फटा तना: इसमें प्रभावित उत्तक पीले पड़कर समाप्त होने लगते हैं तथा कार्की सतह बनाते हैं। अगर खेत में बोरेक्स दिया जाए तो फसल को विकृति से बचाया जा सकता है।

न्यूनता रोग

आंतरिक गलन (हार्ट रॉट): शीर्ष गलन या शुष्क गलन के नाम से जाना जाने वाला रोग चुकंदर में विशेष रूप से देखा जाता है। आंतरिक जड़ों के ऊतक मर जाते हैं तथा नई पत्तियां पूरी तरह से मुड़ जाती हैं। शिराएं पीली पड़ जाती हैं और पर्णवृन्त कड़े हो जाते हैं। शाखाओं के वृद्धनशील अग्र भाग मरने लगते हैं।

फूलगोभी का भूरा रोग: शीर्ष पर भूरे चकत्ते पड़ना, पत्तियों का मोटा तथा कड़ा हो जाना, नीचे की ओर मुड़ जाना, मध्य शिरा के किनारे एवं पर्णवृंत पर फफोले पड़ जाना इस रोग के लक्षण हैं।

टमाटर: फलों का फटना- टमाटर में जिस तरफ से फल तने से लगते हैं, वहीं से परिपक्वता के समय फट जाते हैं। जिसे फलों का फटना या क्रैकिंग कहते हैं। फलों के फटने के कारण बाजार में इन फलों की कीमत कम होने के साथ-साथ भण्डारण क्षमता भी कम हो जाती है। इससे बचने के लिए खेत में 10-15 किलो ग्राम बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में प्रयोग करना चाहिए।

तना व्यवस्था की प्रतिकूलता

इस व्याधि से प्रभावित पौधों के मुख्य लक्षण असामान्य वृद्धि और खोखला तना है। बोरॉन की कमी के कारण नाइट्रोजन और पोटाश तत्वों का पौधों द्वारा असंतुलित अवशोषण इसका प्रमुख कारण है।

मूली-जड़ों का खोखलापन

मूली की जड़े पानी शोषित कर फूली हुई आकृति का होना तथा काटने पर बीच में काले रंग का खाली स्थान दिखना, इस रोग की पहचान का सबसे बड़ा लक्षण है।

प्रबंधन: लक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में ही बोरोन के 25 पी.पी.एम. के घोल का 2-3 छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना आवश्यक है। इसके लिए 72.56 ग्राम बोरेक्स लेकर 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। फसल लगाने से पूर्व 10 किलो ग्राम बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग करना चाहिए।

सारिणी १: सब्जियों की विकृतियां तथा उनका निवारण

विकृतियां	निवारण
बैंगन में लीफ हॉपर के प्रति संवेदनशीलता	बोरेक्स की 12 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग
गांठ गोभी में गांठ का फटना	बोरेक्स की 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग
खीरा व टमाटर में लीटिल लीफ/रोसेटींग	बोरेक्स की 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग
चुकन्दर में ब्राउन हार्ट	बोरेक्स की 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग

सारिणी २: सब्जियों में बोरॉन की संवदेनशीलता का तुलनात्मक विवरण

अत्यधिक संवेदनशील सब्जियां	मध्यम संवेदनशील सब्जियां	कम संवेदनशील सब्जियां
चुकंदर, सेलेरी, शकरकन्द, शलजम, फूलगोभी	पत्तागोभी, गाजर, टमाटर, मूली, प्याज, पालक	मटर वर्गीय, आलू

सारिणी ३: बोरोनधारी उर्वरक

उर्वरक	रासायनिक सूत्र	बोरॉन की प्रतिशत मात्रा
बोरेक्स	$Na_2B_4O_7$-$10H_2O$	11
सोडियम टेटराबोरेट	$Na_2B_4O_7$-$5H_2O$	14
बोरिक अम्ल	H_3BO_3	17
कोलिमेनाइट	$CA_2B_6O_{11}$-$5H_2O$	10

सामाजिक सुरक्षा के लिए सरकारी योजनाएं

वर्षा सिंह[1], आर.एस. नेगी[2], कमलेश कुमार सिंह[3], प्रमोद कुमार[3], विनोद तिवारी[1], वी.पी. सिंह[1]

1, विषय वस्तु विशेषज्ञ 2- पी.सी.

कृषि विज्ञान केन्द्र, दीनदयाल शोध संस्थान, मझगवां, सतना, म.प्र.

3कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

केन्द्र सरकार शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए कई योजनाएं चला रही है। बहुत सी ऐसी योजनाएं हैं जिसका फायदा आम लोगों को उठाना चाहिए परंतु जानकारी न होने से वे फायदा उठा नहीं पाते। करीब 35 विभागों मंत्रालयों में 100 से ज्यादा योजनाएं चलाई जा रही हैं, जिनका फायदा आम लोग उठा सकते हैं। कुछ खास योजनाओं की जानकारी दी जा रही हैं।

सुकन्या समृद्धि योजना

कब शुरू: 22 जनवरी 2015

उद्देश्य

बेटियों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाना ताकि माता-पिता बेटियों को बोझ न समझे।

योजना के लाभ

कोई भी व्यक्ति अपनी बेटी के नाम यह खाता खोल सकता है। बेटी के पैदा होने से 10 साल के होने तक कभी भी खाता खोला जा सकता है।

बेटी के 21 साल के होने पर पूरी धनराशि निकाली जा सकती है, जबकि बेटी के 18 साल की होने पर 50 फीसदी धनराशि निकाली जा सकती है।

जमा धनराशि पर 8.6 प्रतिशत सालाना की दर से ब्याज मिलता है।

वित्तीय वर्ष में एक हजार कम से कम जमा करना होता है। अधिकतम 1.5 लाख रूपये जमा कर सकते हैं। जमा की गई धनराशि का धारा 80-सी के तहत टैक्स में छूट मिलती है। परिपक्वता पर मिलने वाली धनराशि पर टैक्स नहीं देना होता है। वेबसाइट sukanyasamriddhiaccount.net ऐप : Sukanya Samridhi Yojana नाम से एंड्रॉयड ऐप है।

अटल पेंशन योजना

कब शुरू: 9 मई 2015

उद्देश्य: यह योजना बुढ़ापे में किसी व्यक्ति को सहारा देनें के लिए है। इस पेंशन फंड को इंश्योरेंस रेग्युलेटरी एंड डेवलपमेंट अथारिटी चलाती है। वृद्धवस्था में सहारा देने के लिए इस पेंशन स्कीम को चुन सकते हैं।

योजना के फायदे: यह योजना असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले 18 से 40 साल के लोगों के लिए है। यह सुविधा उन्हीं के लिए है जो आयकर नहीं देते और जिनका ईपीएफ या ईपीएस खाता नहीं है।

इसके तहत 60 साल का होने के बाद व्यक्ति पेंशन का हकदार होगा। इस योजना में 1000 से 5000 रुपये तक की पेंशन राशि मिलेगी।

अगर कोई व्यक्ति 42 रुपये हर महीने अटल पेंशन योजना के तहत जमा करता है तो उसे 60 साल की उम्र के बाद 1000 रुपये हर महीना पेंशन मिलेगी। 210 रुपये

हर महीने जमा करने वाले व्यक्ति को 60 साल की उम्र के बाद 5000 रुपये हर महीने पेंशन मिलेगी। योगदान राशि बैंक खाता से खाते में जमा हो जाएगी।

31 मार्च 2016 तक जो लोग इसका हिस्सा बन चुके हैं, उनके पहले 5 बरसों में जमा होने वाली धनराशि का 50% का योगदान सरकार देगी।

60 साल की उम्र के बाद अगर खाता धारक की मौत हो जाती है तो पेंशन उसके जीवन साथी को मिलेगी। अगर दोनों की मृत्यु हो जाती है तो नामित को एक बार में धनराशि मिलेगी जो 1000 रुपये पेंशन के पाने लिए 1-7 लाख और 5000 रुपये पाने पेंशन के लिए 5-8 लाख रुपये होगी। अगर खाता धारक की मृत्यु 60 साल से पहले ही हो जाती है तो जमा राशि ब्याज समेत नामित को दे दी जाएगी और खाता बंद कर दिया जाएगा।

बैंक से आवेदन पत्र लेकर या वेबसाइट से फॉर्म डाउनलोड करके उसे इस योजना का लाभ उठा सकते हैं। वेबसाइट: atalpensionyojana.in

प्रधान मंत्री विद्या लक्ष्मी पोर्टल

कब शुरू: 15 अगस्त 2015

उद्देश्य

शिक्षा के लिए कर्ज लेने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए यह पोर्टल शुरू किया गया।

इसके तहत यह सुनिशित किया जाता है कि पैसे की कमी के कारण कोई उच्च शिक्षा से वंचित ना रहे। कुल मिलाकर यह पोर्टल बैंको के शिक्षा ऋण की जानकरी विद्यार्थियों को जानकारी दिलाता है।

प्रधानमंत्री उज्जवला योजना

कब शुरू: 1 मई 2016

उद्देश्य

गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले महिलाओं को मुफ्त में एलपीजी कनेक्शन देना। बीपीएल कार्ड धारक इसका फायदा उठा सकते हैं।

योजना के फायदे

वायु प्रदूषण को कम करने में मदद मिलेगी। स्वास्थ्य से जुड़े खतरे कम होंगे। जिन बीपीएल परिवारों के पास कोई एलपीजी कनेक्शन नहीं है, वे आवेदन कर सकते हैं। एससी/ एसटी और पिछड़े लोगों को प्राथमिकता दी जाती है।

ऐप्लिकेशन डाउनलोड करने और भरने के बाद नजदीकी एलपीजी डिस्ट्रिब्यूशन सेंटर पर जमा कर सकते हैं। वेबसाइट: pmujjwalayojana.in

प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना

कब शुरू हुई: 9 मई

योजना के फायदे

खाता होल्डर की किसी वजह से मृत्यु होती है तो उसके आश्रितों को 2 लाख रुपये की बीमा राशि मिलती है।

यह योजना बैंक खाता रखने वाले 18 से 50 साल के लोगों के लिए है।

50 साल की उम्र पूरी करने से पहले इस योजना में शामिल लोगों को 330 रुपये का सालाना प्रीमियम देना पड़ता है।

कोई भी इस योजना को एक साल या इससे ज्यादा वक्त के लिए चुन सकता है। लंबी अवधि के विकल्प के मामले में बैंक हर साल प्रीमियम की धनराशि ऑटो डेबिट कर देगा। वेबसाइट: pradhanmantriyojana.in

राष्ट्रीय पेंशन स्कीम (NPS)

कब शुरू: 1 जनवरी 2004

उद्देश्य

समाज के हर तबके के लोगों को बुढ़ापे में आर्थिक सुरक्षा मुहैया कराना। इससे आप आज छोटी-छोटी बचत कर जीवन की दूसरी पारी-रिटयरमेंट के लिये पैसा जमा कर सकते हैं।

योजना के फायदे

कोई भी भारतीय नागरिक जिनकी उम्र 18 से 60 साल है, वह इसका लाभ ले सकता है। चाहे वह नौकरी पेशा हो या व्यापरी।

इनकम टैक्स के तहत 1.5 लाख सीमा के अतिरिक्त एन पी एस के जरिए 50,000 रूपये के निवेश पर टैक्स में अतिरिक्त छूट पा सकते है।

दो तरह के खाता धारक होते हैं टियर –1 और टियर –2। टियर 1 खाता में कम से कम 6000 रूपये जमा करते हैं। टियर –2 खाता में 1000 रूपये से खुलवाया जाता है। इसमें कभी भी कितना पैसा जमा करवाया जा सकता है।

जो धन राशि आप जमा करते हैं उस पर कुल मिलाकर 2 लाख रूपये के निवेश पर टैक्स पर छूट मिलती है । 1.5 लाख रूपये 80 सी में कवर हो जाती है और बाकी 50 हजार रूपये का अतिरिक्त कटौती मिलती है।

रिटायर्मेंट के वक्त जो 60 प्रतिशत धनराशि आप निकालेंगे, उनमें से 40 प्रतिशत धनराशि टैक्स फ्री होगी। 20 प्रतिशत धनराशि पर आपको ब्याज देना होगा।

इसमें जो आप पैसा निवेश करते हैं, उसका कुछ हिस्सा इक्विटी में तथा कुछ डेट में लगया जाता है। अगर आपको बाजार की अच्छी समझ नहीं है तो आप आटो मूड चुन सकते हैं, जिनमें उम्र बढ़ने के साथ–साथ आपका इक्विटी में योगदान कम हो जाता है। और सेफ इंस्ट्रमेंट में बढ़ता है।

वेबसाइट: enps-nsdl.com ऐप: NPS National Pension Scheme नाम से एंड्रायड और iOS दोनों के लिए ऐप है।

प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना

कब शुरू: 9 मई 2015

उद्देश्य

यह बीमा मृत्यु के मामले में आश्रितों को लाभ देने के लिए है। कम प्रीमियम में ज्यादा आर्थिक सुरक्षा पाने के लिए इसे चुन सकते हैं।

किसी हादसे में मृत्यु होने या शरीर के किसी अंग के बेकार हो जाने पर आर्थिक सुरक्षा देना। सिर्फ 12 रुपये सालाना प्रीमियम देकर दो लाख रुपये का इंश्योरेंस आप ले सकते हैं। इस योजना के जरिए हर इंसान को सामाजिक सुरक्षा देने की कोशिश की गई है।

इस योजना का लाभ किसी भी वर्ग के लोग ले सकते हैं। मुख्य लक्ष्य वे लोग हैं जिनका किसी भी बैंक में खाता नहीं है। इसे किसी भी बैंक में खोल सकते हैं।

योजना के लाभ

हादसे में मृत्यु या पूर्ण विकलांगता के लिए बीमा राशि 2 लाख रुपये और आंशिक विकलांगता के लिए 1 लाख रुपये है। 18 से 70 साल की उम्र के वे सभी लोग, जिनके पास आधार से जुड़ा बैंक खाता हो, इस योजना का लाभ ले सकते हैं।

योजना का सालाना प्रीमियम सिर्फ 12 रुपये है जो कस्टमर के खाते से बैंक ऑटो डेबिट हो जाएगा। यह प्रीमियम के भुगतान का इकलौता जरिया है।

कस्टमर को इस योजना को चुनने के लिए 1 जून तक बैंक में सरल फॉर्म जमा करना होता है। यह फॉर्म बैंक से मिलता है।

लम्बी अवधि के आधार पर भी इस योजना में विकल्प चुन सकते हैं। ऐसा होने पर खाते से बैंक हर साल प्रीमियम ऑटो डेबिट कर लेगा। वेबसाइट: pradhanmantriyojana.in

ऐप: PMSBY नाम से एंड्रॉयड ऐप भी है।

प्रधानमंत्री जनधन योजना

कब शुरू: 28 अगस्त 2014

उद्देश्य

हर नागरिक का बैंक में खाता खुलवाकर उसे आर्थिक रूप से सशक्त बनाना। अगर आपका किसी बैंक में अकाउंट नहीं है तो आप जन धन योजना के तहत आसानी से अपना अकाउंट खुलवा सकते हैं।

कहां और कैसे खोलें खाता।

खाता किसी भी बैंक की शाखा या बैंक मित्र खाता में खोला जा सकता है। खाता खोलने के लिए बैंक खिड़की से या नजदीकी बैंक की वेबसाइट से फॉर्म डाउंलोड करें और भरकर नजदीकी बैंक में जमा करें।

अगर आधार कार्ड है तो किसी दूसरे दस्तावेज की जरूरत नहीं है। अगर पता बदल गया है तो मौजूदा दस्तावेज की स्वयं अभिप्रमाणित प्रतिलिपि जरूरी है। खाते शून्य बैलेंस पर खोले जाते हैं। दुर्घटना बीमा खाता धारक का, 1,00,000, जीवन बीमा 30,000, योजना के लाभ, जमा राशि पर ब्याज मिलेगा।

मिनिमम बैलेंस बनाए रखने की जरूरत नहीं। हालांकि बेहतर है कि आप रूपे कार्ड से किसी एटीएम से पैसे निकालने के लिए कुछ धनराशि खाते में रखें।

देश में कहीं भी पैसे आसानी से भेजने की सुविधा मिलेगी।

6 महीने तक इन खातों के संतोषजनक चलने के बाद आपकी राशि पर (ओवरड्राफ्ट) की सुविधा दी जाएगी।

हर परिवार के एक खाते, खासकर महिला के खाते में 5000 रुपये की ओवरड्राफ्ट सुविधा दी जाएगी। वेबसाइट: jansuraksha.gov.in, ऐप: PMJDY नाम से एंड्रॉयड ऐप भी है।

वेबसाइट: jansuraksha.gov.in ऐप: PMJDY नाम से एंड्रायड ऐप भी है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना

कब शुरू: 1 अप्रैल 2008

उद्देश्य

देश में असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए बीमा कवरेज देना।

योजना के लाभ

बीपीएल कार्डधारी यानी गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाले और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों के लिए है यह योजना।

हर परिवार को सालाना फ्लोटर आधार पर 30 हजार रुपये की बीमा राशि मिलेगी, यानी किसी भी सूचीबद्ध हॉस्पिटल में 30 हजार रुपये तक का इलाज करा सकते हैं। इलाज के लिए मरीज को नकद रुपये नहीं देने होते।

स्मार्ट कार्ड के लिए पंचायत या ब्लॉक या वार्ड लेवल पर समय-समय पर कैंप लगाए जाते हैं। आधार कार्ड के जरिए इसे बनवा सकते हैं।

वेबसाइट: rsby.gov.in

□□

आम की जैविक खेती में एकीकृत कीट प्रबंधन

के. उषा, सुनील कुमार एवं अशोक यादव
फल एवं औद्यानिकी प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

आम की जैविक खेती एक पारिस्थितिकी उत्पादन प्रबंधन प्रणाली है जो जैविक चक्र, जैव-विविधता, अखण्डता तथा मृदा की जैविक गतिविधियों को दूर कृषि आदानों के न्यूनतम उपयोग तथा टिकाऊ कृषि के प्रबंधन तरीकों पर आधारित है जो कि पुर्नस्थापन करने और पारिस्थितिकी में सद्भाव को बढ़ावा देती है। भारत में जैविक आम उत्पादन केवल व्यक्तिगत गैर सरकारी संगठनों और अलग क्षेत्रों में उद्यमियों द्वारा अभ्यास किया गया था और अब धीरे-धीरे जैविक कृषि प्रसार में वृद्धि, उपभोक्ताओं द्वारा सुरक्षित भोजन की मांग तथा जैविक फल उत्पादकों को सरकार द्वारा समर्थन की वजह से लोकप्रिय हो रही है। अन्य उत्पादन समस्याओं के अलावा जैविक आम के उत्पादन में कई कीटों जैसे आम का फुदका, मिलीबग, तना छेदक, तथा फल मक्खी का समय पर नियंत्रण आदि प्रमुख चुनौतियाँ हैं जो फल की पैदावार और गुणवत्ता को तेजी से कम करते हैं। सफल जैविक आम के उत्पादन के लिए एक समन्वित कीट प्रबंधन दृष्टिकोण जिसमें निरोधात्मक उपाय शामिल हों और जिससे समस्याओं को कुछ हद तक कम किया जा सके को अपनाये जाने की जरूरत है। जो लोग जैविक आम के उत्पादन के साथ आईपीएम रणनीतियों को सम्मिलत करते हैं वे बिना आईपीएम के जैविक उत्पादकों से अधिक पैदावार तथा मुनाफा कमाते हैं। इससे किसी विशेष कीट नियंत्रण के लिए उपयोग किये जाने वाले रासायनों में कुछ बदलाव की आवश्यकता हो सकती है। जैविक क्षेत्र की जैव-विविधता को बढ़ाने के लिए तथा लाभकारी परभक्षी कीटों को आकर्षित करने के लिए किये गये प्रयासों से कार्यरत आईपीएम विधियों की दक्षता को बढ़ाया जा सकता है। रोग प्रतिरोधी किस्मों को उगाना सबसे अच्छा विकल्प है लेकिन कोई भी किस्म सभी कीट समस्याओं के लिए प्रतिरोधी नहीं हो सकती। इसलिए सफलतापूर्वक जैविक आम के उत्पादन में कीट नियंत्रण के लिए वैकल्पिक रणनीतियों की जरूरत है। उनमें से कुछ इस प्रकार है।

कीटों के प्रकोप को कम करने के लिए खेत में अपनाई जाने वली प्रबंधन क्रियाएँ

उपर्युक्त खेत प्रबंधन के तरीकों को अपनाने के लिए किसी निश्चित स्थान पर कीटों का प्रकोप तथा मौसम की मात्रा की व्याख्या करना महत्वपूर्ण है जो कि उत्पादन लागत का प्रबंधन तथा उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद करता है। मजबूत जैविक प्रबंधन के तरीकों को अपनाकर प्रचलित जोखिमों को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए दक्षिणी क्षेत्रों में किस्में, कृषि योजना, घनत्व छत्रक संरचना तथा कवक के हमले को कम करने के लिए छंटाई की मात्रा के लिए जरूरत है। फलन के समय जल प्लावन वाली अवस्था में जैविक आम का उत्पादन, तथा उपेक्षित बगीचे कीट, रोग व खरपतवारों के फैलने के नये स्रोत है जो कि फलों की पैदावार को तेजी से कम कर देते हैं। जैविक और परंम्परागत खेतों को रूक रूक कर नियुक्ति करने

से कीटों की गतिशीलता को बदला जा सकता है। जिसमें पारम्परिक उत्पादकों के साथ सहयोग वांछित है। खेत में कीटों की लगातार निगरानी अनावश्यक छिड़काव की लागत को कम करने में मदद करते हैं तथा प्रतिरोधी रोपण सामग्री का उपयोग करना चाहिए। स्थानीय किस्में जो कि स्थानीय वातावरण के परिवर्तन तथा कीटों के प्रति प्रतिरोधिता दर्शाती है, का उपयोग स्वस्थ विकास को सुनिश्चित करेगा। एक स्वस्थ पेड़ को स्वस्थ रखने के लिए स्वस्थ मृदा की आवश्यकता होती है पर्याप्त जैविक पदार्थों की आपूर्ति तथा पोषक तत्व चक्र को बढ़ाने वाली दर्शाएं प्रदान कर मृदा की जैविक दशा को सुधार कर जिससे मिट्टी के रासायनिक, जैविक तथा भौतिक दशा में संतुलन हासिल किया जा सके। पर्याप्त हवा तथा आंतरिक प्रकाश को पेड़ के सभी भागों तक पर्याप्त रूप से पहुंचाने के लिए उनकी कटाई-छंटाई की जानी चाहिए जिससे रोग के जोखिम को कम किया जा सके तथा गुणवत्तापूर्ण फलों के विकास में मदद कर सके। इनके अलावा, एक नियमित रूप से निगरानी और समय पर हस्तक्षेप प्रभावी कीट प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

उड़ने वाले कीटों को नियंत्रण करने की भौतिक विधियाँ

प्रकाश जाल, फलों को पॉलिथन से बांधना, फीरोमोन जाल और चिपचिपा जाल जैसी रणनीतियाँ कीटों की आबादी को कम करने की प्रभावी भौतिक विधियाँ हैं। फलों को पॉलीथीन में बंद करने से फल-मक्खी के प्रकोप को रोकता है तथा कवक के धब्बों को रोककर फलों की विपणन में सुधार करता हैं। बैंगिंग फलों की भौतिक क्षतियों जैसे रगड़ को कम भी करती हैं, जिससे जैविक कृषि से फलों की गुणवत्ता तथा उत्पादकता में सुधार होता है। कीट प्रपंच, जो कि आकर्षक (रंग, प्रकाश) तथा प्रपंच (रासायनिक गंध) होते हैं कीटों को अधिक पकड़ने में सहायक होते हैं तथा कीटों की संभोग क्रिया के विघटन के लिए उपयोग किये जाते हैं, सभी कीटों की निगरानी तथा नियंत्रण के उपाय के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। जल प्रपंच भी कीटों, पर्ण मोड़क तथा माहू को फंसाने के लिए उपयोगी होते हैं। ये कीट प्रपंच कीटों की आबादी की निगरानी तथा कीटों के पनपने को कम करने में मदद करते हैं। हालांकि एक बार कवर किया गया जाल या चिपचिपा पैड परिवर्तित किया जाना चाहिए जिससे इस तकनीक का लाभ ज्यादा हो सके। रंगीन प्रपंच जैसे पीले रंग के प्रपंच भी लाभकारी कीटों को आकर्षित करते हैं। कीटों की आबादी की निगरानी के लिए इन प्रपंचों की नियमित रूप से जाँच की जानी चाहिए। मिथाइल यूजीनॉल युक्त लटकने वाले प्रपंच, आम के चारों ओर लगाने से फल मक्खी तथा अन्य कीटों का नियंत्रण करने में सहायक होते है। पेड़ों के निचले तने चिपचिपे प्लास्टिक बांधने से पेड़ों पर चढ़ने वाले कीट मिली बग को चढ़ने से रोकते हैं। चिपचिपे बैंड बांधने से वीविल्स के प्रवासन को कम किया जा सकता है। मोथ्स जैसे आर्मीवर्म, कटवर्म तथा तना छेदक आदि रात्रिचर कीट प्रकाश प्रपंच से आकर्षित होते हैं जो कि मोथ के व्यस्क होने के बाद की अवस्था पर अधिक प्रभावी होते हैं। प्रकाश जालों को जलाने के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग, लागत को कम करने तथा जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं है ऐसे बगीचों के उत्पादकों के उत्पादन को बढ़ाने में सक्षम हैं। एबेडेंड सेंसर, बारिश, से बचाते हैं तथा प्रकाश, आपेक्षिक आर्द्रता को नियंत्रित करते हैं तथा स्वचालित रूप से शाम की रोशनी को चालू तथा सुबह बंद कर देते हैं।

कीट नियंत्रण में वानस्पतिक कीटनाशी

परिरोपन विलयन, नीम, लहसुन तथा मिर्ची के स्वाद का पर्णीय छिड़काव 1 प्रतिशत साबुन के विलयन का, 1 प्रतिशत एल्कोहल तथा पैराफिन तेल का 3 प्रतिशत जल विलयन के साथ प्रयोग करने से कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता हैं। 0.2 प्रतिशत निम्बिडीन या अजेडिरेक्टिन 300 पी.पी.एम. का 2 मिली प्रति की दर से फुदका की प्रारम्भिक आबादी के समय छिड़काव करने से फुदकों के आक्रमण को नियंत्रिण कर सकता है। नीम की खल, धतूरा, केलोट्रोपिस तथा नीम युक्त

खाद का मृदा में प्रयोग करने से मृदा जनित कीड़ों, दीमक, सूत्रकृमि तथा अन्य रोग कारकों की गिडार अवस्था को नष्ट किया जा सकता है। वानस्पतिक कीटनाशीयों का मृदा में अथवा पर्णीय छिड़काव के रूप में उपयोग करना पर्यावरण के अनुकुल, मानव एवं पशुओं के स्वास्थ्य के लिए अच्छे होते हैं तथा आम में कीट के नियंत्रण के टिकाऊ दृष्टिकोंण हैं।

कीट नियंत्रण में सूक्ष्म जीवीय जैव कारक

विरोधी सूक्ष्मजीवों के उपयोग के माध्यम से कीटों का जैविक नियंत्रण, रासायनिक नियंत्रण के लिए एक व्यवहार्य वैकल्पिक पद्धति के रूप में माना गया है। जैव कीटनाशक जैसे *स्यूडोमोनास फलूरोसेंस, वर्टीसिलियम लेकानी, व्यूबेरिया बेसीयाना* का पर्णीय छिड़काव तथा नीम के तेल का छिड़काव कई कीटों को नियंत्रित करने में मदद करता है। जैव कीटनाशक का पर्णीय छिड़काव कई कीटों को नियंत्रित करता है। *ट्राईकोडर्मा विरिडी, ट्राईकोडर्मा हारजीएनम, पेसीलस सवरिलिस* आदि का मृदा मे प्रयोग करने से सूत्रकृमियों को कम करते हैं।

कीट प्रबंधन के लिए प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग

हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रु जैसे लेडीवर्ड बीटल, ततैया, मकड़ियाँ, परजीवी कवक आदि फल मक्खियों के मेगट (शिशुओं) पर आक्रमण कर इन्हें नष्ट कर देते हैं। परभक्षी जैसे रोव बीटल, चींटियाँ, पक्षी आदि आम के कई कीटों जैसे फल मक्खियों का प्रभावी नियंत्रण करने में बहुत कुशल हैं। प्राकृतिक शत्रुओं की मौजूदगी तथा गतिविधि फल मक्खियों के अंडे की हानि को कम कर फल मक्खियों की क्षति को कम कर देते हैं। इस तकनीकी को अत्यन्त सावधानी और गहन अध्ययन की आवश्यकता होती हैं, तथा अगर ठीक से प्रबंधित न किया गया तो यह सब गलत हो सकता है। प्राकृतिक शत्रु जैसे घुन (*राइजोग्लाफस स्पीसीज*) चींटी (*कैम्पोनिटस स्पी.*) *मोनोमोरिया स्पी,* तथा *ओकोफिला स्मारगडीयाना*) तथा कवक (*एस्परजिलस स्पी* तथ *ब्यूबेरिया बेसियाना*) आदि आम के पीपिल के नियंत्रण में प्रभावी पाए गए हैं।

कीटों के प्रकोप को कम करने के लिए अंतरासस्य

हल्दी, लहसून, गेंदा आदि फसलों को अंतरासस्य के रूप में लेने से कीटों के प्रकोप को कम करने में मदद मिलती हैं। हल्दी का अन्तरसस्य के रूप में रोपण करने से तना भेदक तथा दीमक को कम किया जा सकता है।

कटाई उपरान्त लगने वाले कीटों के नियंत्रण में भौतिक विधियाँ

एचएसीसीपी (जोखिम विश्लेषन क्रांतिक नियंत्रण अंक) आधारित गुणवत्ता आश्वासन प्रणाली जैविक आवश्यकताओं को स्थापित करने के लिए आदर्श विधि हैं। मौजूदा एचएसीसीपी आधारित क्यू सिस्टम के साथ संचालन में केवल मामूली परिवर्तन जैविक मानकों का अनुपालन करने के लिए आवश्यक हैं। कटाई उपरान्त लगने वाले रोगों को नियंत्रण करने का सबसे अच्छा तरीका, अच्छी तरह से कटाई से पहले (खेत में) रोग प्रबंधन तथा बाग स्वच्छता के साथ तापमान प्रबंधन एक सुनिश्चित तरीका है। नियमित रूप से पैकिंग उपकरणों की सफाई तथा अवांछित फलों को फलों को निकालने से कवक जनित रोगों का कम किया जा सकता है। गर्म जल उपचार, वाष्पगर्मी उपचार तथा विकिरण आदि नियति के रोगरोध के लिए प्रमुख भौतिक विधियाँ हैं फलों के तुराई उपरान्त, फलों को गर्मजल (55 डिग्री सेल्सियस) में 3.5 मिनट तक डुबाने से फल मक्खी को नियंत्रण किया जा सकता है। वाष्प गर्म उपचार में फलों का वाष्प में संतृप्त हवा के साथ के एक वक्ष में गरम किया जाता हैं जब तक कि गुदा का तापमान 40 डिग्री से. तक पहुंच जाये। यह तापमान हवादार कक्ष में 10 मिनट तक बनाए रखा जाता है। यह विधि आम के फलों से फल मक्खियों के संक्रमण को कम करने में उपयोग में ली जाती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएसए) में निर्यात के लिए विकिरण का उपयोग किया जाता है।

कृषि में प्लास्टिक की उपयोगिता

अजय कुमार, रणबीर सिंह, रविन्द्र कौर एवं राजेन्द्र कुमार
जल प्रौद्योगिकी केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

कृषि में विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्लास्टिक का उपयोग किसी न किसी रूप में होता है। प्लास्टिक का विभिन्न तरीकों एवं रूप में उपयोग किए जाने की तकनीक को प्लास्टिक कल्चर तकनीक कहलाती है। कृषि में प्लास्टिक का उपयोग नर्सरी बैग, गमले, बाल्टी, प्रो-ट्रे, पलवार, तालाब तथा जलाशय के अस्तर, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति, कृषि यंत्र, प्लास्टिक से बने सौलर शुष्कक, ग्रीनहाउस, पॉली टनल, शेडनेट, पक्षी रोधी नेट, कीट-अवरोधी, ओला अवरोधी नेट, चार दीवारी वाले जाल, प्लास्टिक ट्रे, बॉक्स, क्रेट, लीनो बैग, फल एवं सब्जियों की पैकिंग आदि के रूप में होता है। प्लास्टिक में बहुत सी विशेषताएं पाई जाती हैं जिसके कारण बड़ी तेजी से इसका प्रयोग बढ़ा है, जैसे:

- प्लास्टिक ज्यादा मजबूत और लचीला होता है।
- प्लास्टिक में जंग नहीं लगता और न ही किसी तरह की सड़न होती है।
- तरल पदार्थों एवं गैस के रिसाव को रोकने मे बेहतर होती है।
- वजन में हल्का होना।

प्लास्टिक के उपयोग द्वारा दूरस्त क्षेत्रों जैसे उत्तर भारत एवं उत्तर-पूर्वी भारत के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र जैसे श्रीनगर, लेह, लद्दाख, शिलोंग इत्यादि क्षेत्रों में सब्जियों, कट-फ्लोवर की खेती एवं फलोत्पादन संभव हो सका है, तो दूसरी तरफ रेगिस्तान की ऊबड़-खाबड़ एवं बेकार पड़ी जमीन के ऊपर सब्जियों एवं फल-फूलों की व्यावसायिक तौर पर किसान खेती कर रहे हैं, जिसकी पूर्व में कल्पना भी नहीं कर सकते थे और अब यह आम बात है। आज प्लास्टिक ने कृषि जगत एवं किसानों की दुनिया ही बदलकर रख दी हैं। कृषि में प्लास्टिक का उपयोग निम्नलिखित है जैसे:

१. नर्सरी में प्लास्टिक का प्रयोग: गुणवत्ता युक्त पौध, कलमों तथा पौधों को उगाने के लिए प्लास्टिक बैग, गमलों, प्लग-ट्रे, बीज-ट्रे, प्रो-ट्रे तथा लटकने वाली टोकरी का प्रयोग किया जाता है। प्लास्टिक की थैली का प्रयोग पौध उगाने के लिए किया जाता है। पौध तैयार होने के बाद प्लास्टिक काटकर भूमि में रोपित कर दिया जाता है। कद्दूवर्गीय/सोलानेसी कुल की सब्जियों में शीघ्र अंकुरण के लिए बीज को प्लास्टिक ट्रे या थैलियों में डाला जाता है तथा पौध तैयार होने के बाद स्थानातंरित किया जाता है। फूलों व सब्जियों के लिए 10-15 सें.मी. व फलों के लिए 15-20 सें.मी. आकार की थैलियाँ इस्तेमाल की जाती हैं। साथ ही नर्सरी उगाने वाली प्लास्टिक ट्रे का प्रयोग साग-सब्ज़ियों की नर्सरी (पौध) तैयार करने के लिए किया जाता है। इसके मुख्य लाभ इस प्रकार हैं। पोलिथीन बैग (प्लास्टिक थेलियाँ) के पौध में अगर बीमारी लगे तो उसी पौधे पर असर होता है। और उसे आसानी से उठाया जा सकता है। इसके अलावा पौधों को आसानी से कहीं भी लाया व ले जाया जा सकता है। नर्सरी ट्रे में सभी पौधों की बढ़वार बहुत अच्छी एवं समान रूप से होती है। पौधों की जड़ों का

विकास बहुत अच्छा होता है, जिससे ये तुरन्त जमीन (मिट्टी) में स्थापित हो जाते हैं। इस तरीके से बीजों का अँकुरण भी बढ़िया होता है और पौधे कम मरते है।

२. प्लास्टिक का पलवार के रूप में उपयोग

प्लास्टिक फिल्म का जब पलवार के रूप में प्रयोग किया जाता है तो उसे प्लास्टिक पलवार कहते हैं। उद्यानिकी फसलों का उत्पादन बढ़ाने और लागत को कम करने के लिए किसान मृदा में नमी संरक्षण हेतु विभिन्न पदार्थों जैसे सूखी पत्तियां, धान का पुआल, धान की भूसी, सूखी घास, सूखे गन्ने की पत्तियों, सूखे नारियल के पत्ते आदि का प्रयोग कर रहे हैं, जो कि आसानी से उपलब्ध नहीं होते हैं तथा इनको प्रयोग में लाने में अधिक खर्च आता है, जबकि प्लास्टिक पलवार आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं साथ ही उसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने एवं बिछाने में आसानी होती है। इन्हीं गुणों के कारण वर्तमान समय में प्लास्टिक पलवार का उपयोग अधिक हो रहा है। वर्तमान में कम धनत्व वाली पॉलीथीन व रैखिक कम धनत्व वाली पॉलीथीन प्रमुख रूप से प्रयोग में लाई जा रही है। प्लास्टिक पलवार जमीन का तापमान, आर्द्रता, कार्बन डाई ऑक्साइड द्वारा विनिमय संवर्धन, जमीन में वृद्धि हुए सूक्ष्म जीवों की गतिविधियों को बढ़ाते हैं जो पौधों की वृद्धि व उपज के लिए प्रभावी होते हैं। कम अवधि या सब्जियों की फसलों में 20 से 25 माइक्रोन की फिल्म का प्रयोग किया जाता है। बहुवार्षिक लंबी अवधि की फसलों के लिए 50 से 100 माइक्रोन मोटाई की फिल्म का प्रयोग किया जाता है। पलवार को बुवाई व रोपाई से पूर्व ही बिछाया जाता है। इसको क्यारी बनाने के साथ ही बिछा कर किनारे से दबा दिया जाता है। वर्तमान में ट्रैक्टर से पलवार लगाने की मशीन उपलब्ध है। फलदार फसलों में पौधे आच्छादन के अनुसार पलवार को काटना चाहिए। प्लास्टिक पलवार के प्रकार निम्नलिखित है:

1. काली पलवार: यह पारगम्य नहीं होती, इस कारण से इस पलवार के नीचे जमीन में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया न होने के कारण खरपतवार का विकास नहीं होता एवं नमी संरक्षण व मृदा तापमान को भी नियंत्रित करता है। इसके अलावा मृदा को ठंडा रखने व कीट-पंतगों को दूर करती है।
2. पारदर्शी पलवार: पारदर्शी पलवार पूर्ण रूप से पारगम्य होती है। इस कारण से कहीं-कहीं खरपतवार उग आते है, परन्तु यह खरपतवार पर कवच रूप बनाने के कारण उनके विकास को अवरूध कर देता है। मृदा जनित रोग कम होते हैं साथ ही सौरीकरण से नर्सरी में बीजों का अंकुरण 100 प्रतिशत होता है।
3. सफेद पलवार: यह मृदा तापमान को नियंत्रित रखती है।

३. प्लास्टिक टनल (सुरंग नुमा) तकनीक

भारत में प्लास्टिक टनल (सुरंगनुमा) तकनीकियाँ सभी स्थानों के योग्य हैं और ये साधारणत: कम लागत वाली होती हैं तथा आसानी से स्थापित की जा सकती हैं। टनल, पौधों की उचित वृद्धि एवं रख-रखाव में सहायक है। ये नर्सरी तथा उच्च मूल्य के फल एवं सब्जी फसलों के लिए अच्छे होते हैं। प्लास्टिक टनल बनाने के लिए ट्रैक्टर चालित यंत्र उपलब्ध भी है। लो-टनल संरचना से फसल तेज हवा, बरसात एवं कीटों से सुरक्षित रहती है। इस प्रकार की प्रौद्योगिकियाँ एवं उपकरणों का देश में प्रचार तथा अपनाने की आवश्यकता है।

४. दवाबयुक्त सिंचाई पद्धति

बागवानी-फसलों में सिंचाई हेतु स्प्रिंकलर, ड्रिप सिंचाई, संयुक्त दबावयुक्त सिंचाई पद्धतियां प्रसिद्ध हो रही हैं। पंक्तियों में उगाई जाने वाली फसलों में सिंचाई प्रणाली तथा सिंचाई पाइप बदलने की आवश्यकता नहीं होती है। तंग (संकरी) पंक्ति वाली फसलों एवं ग्रीनहाउस में सूक्ष्म स्प्रिंकलरों का प्रयोग किया जाता है। स्प्रिंकलर प्रणाली प्राकृतिक वर्षा की तरह है। सूक्ष्म सिंचाई पद्धति में कार्यों की उच्च क्षमता तथा सिंचाई की कम लागत होती है। इसमें 40-60 प्रतिशत पानी की बचत, मजदूर

तथा समतल का प्रवाह प्रक्षेत्र दशाओं में प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति जल एवं पोषक की उपयोग क्षमता को बढ़ाने में काफी प्रभावी है।

ड्रिप सिंचाई पद्धति में मुख्यत: 1, 2, 4 एवं 8 लीटर प्रति घण्टा रिसाव दर वाले ड्रिपर प्रयोग किये जाते हैं। ड्रिप सिंचाई कम दबाव वाली तकनीक है जिसमें जल को समान रुप से कम मात्रा में ड्रिपर्स जल उत्सर्जकों द्वारा नियंत्रित रुप से बूंद-बूंद करके पौधों की आवश्यकतानुसार जड़ में दिया जाता है। ड्रिप सिंचाई में जल नियंत्रित अन्तराल पर देने से जड़ों में जल दबाव नही पड़ता है और पौधों के लिए सदैव अनुकूल मृदा का नमी स्तर बना रहता है। इसलिए ड्रिप सिंचाई से पानी की बचत के अलावा सतह सिंचाई की अपेक्षा उपज में भारी वृद्धि देखी गयी है। सिंचाई के दौरान टेन्सियोमीटर नमी तनाव आधारित सूचना उपलब्ध कराता है। ड्रिप सिंचाई किसी अन्य विधियों की अपेक्षा काफी लाभप्रद है। माइक्रो सिंचाई पद्धति तकनीकी का आर्थिक विवरण उच्च लाभप्रद होने के कारण सब्जी-फसलों के लिए स्वचालित नियंत्रण एवं सार्वजनिक पैमाने पर अपनाने की आवश्यकता है।

६. ड्रम किट ड्रिप सिंचाई

इस तरीके से आश्यकतानुसार जगह-जगह सौ या डेढ़ सौ लीटर वाले मजबूत प्लास्टिक के ड्रमों को 3 मीटर ऊँचे सीमेंट के स्टैंड पर रख दिया जाता है। इन ड्रमों से पानी को निकलने के लिए लगाए पाइपों में गेट वॉल्व व फिल्टर लगाए जाते हैं ताकि जरूरत नही होने पर गेट वॉल्व को बंद कर पानी की सप्लाई को रोका जा सके। जहाँ कम बरसात होती है उस क्षेत्र की बागवानी फसलों के लिए यह तरीका किसी वरदान से कम नही है।

५. फर्टीगेशन (Fertigation)

फर्टीगेशन तकनीक का प्रयोग सिंचाई जल में उर्वरक को मिलाकर देने में होता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली में घुलनशील रासायनिक उर्वरकों को सिंचाई जल में मिश्रित करके ड्रिप के माध्यम से सीधे पौधों की जड़ों को दिया जाता है। यह उच्च दक्षता एवं कम लागत वाली विधि है। उर्वरक डिलिवरी (प्रसरण) पद्धति में शाकनाशी, कीटनाशी तथा अन्य रसायनों को प्रयोग कर सकते हैं। ड्रिप सिंचाई द्वारा जल की विभिन्न प्रकार की पारंपारिक हानियों जैसे गहन रिसाव (परिस्रवण) प्रवाह तथा मृदा वाष्पीकरण आदि से बचाया जा सकता है। इसके विभिन्न कार्यों को सम्पादित करने हेतु मुख्य अवयवों जैसे उर्वरक टैंक, उर्वरक घोलक, ड्रिपर, छन्नक, दाबमापी, फिटिंग्स वाल्व, और उर्वरक अन्त: क्षेपक यंत्र आदि हैं। फसल तथा मृदा की आवश्यकताओं के अनुरुप उर्वरक एवं जल को जड़ क्षेत्र में देना चाहिए। इस तकनीक के आर्थिक अध्ययन को संचालित करने एवं बड़े पैमाने पर अपनाने की आवश्यकता है।

पौध संरक्षण में प्लाटिक का प्रयोग

प्लास्टिक के उपयोग से पादप कीट एवं रोग के आक्रमण पर भी नियंत्रण रखा जा सकता है। मृदा सोलेराइजेशन के माध्यम से मृदा में उपस्थित हानिकारक कीट, फफूंद एवं जीवाणु के अवशेषों को नष्ट किया जा सकता है। प्लास्टिक फिल्म बिछाकर भूमि का तापक्रम बढ़ा दिया जाता है जिससे कीट इत्यादि नष्ट हो जाते हैं।

जल संरक्षण में प्लास्टिक का प्रयोग: कृत्रिम तालाब, नहर एवं जलाशय में प्लास्टिक का उपयोग करने पर पानी की उपलब्धता बनी रहती है तथा पानी के वाष्पीकरण एवं सीपेज से होने वाली हानि को रोका जा सकता है।

प्लास्टिक में सब्जियों की पैकिंग

फलों के संग्रहण एवं आवागमन हेतु प्लास्टिक के बॉक्स का उपयोग किया जाता है। फलों एवं सब्जियों को बाजार में भेजने से पहले उनकी पैंकिंग करना आवश्यक होता है। अगर फल-सब्जी को ज्यादा दूर की मंडी में भेजना है तो गत्ते के डिब्बे में पैकिंग की जा सकती है। पारंपरिक पैकेजिंग तकनीकों में लकड़ी की पेटियों तथा बोरियों का उपयोग होता है, इनमें अनेक कमियां हैं

जिनमें उत्पादन का नुकसान होता है। टमाटर एवं पालक आदि को बोरों में नहीं भरा जाता है, इनके लिए प्लास्टिक की क्रेट उत्तम होती है। ताकि एक के ऊपर एक रखने पर ये दबकर खराब न हो।

सब्जियों को सुखाने हेतु प्लास्टिक से निर्मित सोलर शुष्कक का प्रयोग

फल एवं सब्जियों को सुखा कर रखना, बहुत ही सरल एवं सस्ती विधि है। इसके लिए सौर पॉलीहाउस शुष्कक तरीका सर्वोत्तम है। इसमें कृषि उत्पादों को सुखाकर परिरक्षित करने में जैविक व रासायनिक बदलावों पर काबू पा सकते हैं। सौर पॉलीहाउस शुष्कक में फलों एवं सब्जियों की नमी को इतना कम कर दिया जाता है कि इनमें सड़न या गलन न होने पाए। सूखने की पहचान यह है कि उसे हाथ में लेने पर किसी तरह की नमी या चिपचिपापन न आए और मुटठ्ी में बन्द करने पर कड़क महसूस हो। वैज्ञानिक तरीके से निर्धारित नमी स्तर तक लाकर इससे संरक्षित कर भण्डारित करते हैं।

पॉलीहाउस शुष्कक का आकार एवं संरचना

पूसा संस्थान, नई दिल्ली के कृषि अभियांत्रिकी संभाग में अनुसंधान के लिए सौर गुफानुमा अर्द्ध-बेलनाकार शुष्कक बनाया है। इसमें सौर किरणों से संरक्षित 200 माइक्रोन पॉलीथीन प्लास्टिक की चादर लगी है तथा इसके अन्दर श्रमिकों के कार्य करने के लिए दरवाजा लगाया गया है। इसका आधार सीमेंट व कंकरीट का बनाया गया है। इसे उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थापित किया गया है जिससे पूर्व व पश्चिम की सूर्य की सौर किरणों को आने दिया जा सके। इसमें ऊपर की गर्म हवा को निकालने के लिए काले रंग की एक चिमनी दक्षिण दिशा में लगाई गयी है।

कृषि में प्लास्टिक प्रयोग पर भारत सरकार की अनुदान योजना

भारत सरकार ने उपरोक्त उपयोगों में प्लास्टिक प्रयोग के लिए अनुदान योजना के माध्यम से किसानों एवं उद्यमियों को अनुदान प्रदान कर रही है। यदि कोई किसान अनुदान चाहता है तो वह राज्यों के बागवानी/कृषि निदेशालयों से सम्पर्क करके लाभ प्राप्त कर सकता है।

□□

परवल की खेती

अरविन्द नागर, राहुल कुमार और शिल्पा देवी
शाकीय विज्ञान संभाग
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

परवल कददूवर्गीय सब्जियों में महत्वपूर्ण सब्जी मानी जाती है। इसकी उपलब्धता फरवरी से प्रारम्भ होकर दिसम्बर तक बाजार में होती हैं। निर्यात की दृष्टि से परवल एक महत्वपूर्ण सब्जी है उत्तर प्रदेश एवं बिहार के मैदानी भागों में इसकी खेती सिंचित दशा में की जाती है जबकि नदियों के किनारे बिहार, उत्तर प्रदेश आदि जगहों में की जाती है। जिसे रिवर बेड कल्टीवेशन के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह की खेती दियारा जमीं में की जाती है, जहाँ हर साल नयी मिट्टी नदियों द्वारा जमा होती है। परवल अत्यंत ही सुपाच्य, पौष्टिक, स्वास्थ्य वर्धक एवं औषधीय गुणों से भरपूर एक लोकप्रिय सब्जी है। इसका फल अंडाकार, चिकना, 5-12 सेंटीमीटर लंबा तथा 2-6 सेंटीमीटर व्यास का होता है। फल पर कभी-कभी धरियाँ भी बनती है। इसके फल को वानस्पतिक रूप से पेपो कहा जाता है। इसके फल का प्रयोग मुख्य रूप से सब्जी, अचार और मिठाई बनाने के लिए किया जाता है।

पौष्टिक महत्वः- परवल औषधीय गुणों से भरपूर सब्जी है। यह अत्यंत ही सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक सब्जी है। इसका उपयोग क्षय एवं मूत्र संबंधी रोगों में किया जाता है। इसके कच्चे एवं मुलायम फलों को सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी मुलायम शाखाओं एवं पत्तियों का उपयोग सूप बनाने में किया जाता है। देश के कुछ भागों में इसके फलों से मिठाई तैयार की जाती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में खनिज एवं आयरन पाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्व नीचे सारिणी में दिए गए हैं।

उद्‌गम स्थल एवं वितरणः परवल भारतीय मूल का पौधा है और संभवतः बंगाल इसका उद्‌गम स्थल है। इसकी खेती कि जाने वाली किस्मों में विविधता आसाम-बंगाल क्षेत्र में ज्यादा होती है जो स्पष्ट करता है

सारिणी १: परवल में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति १०० ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	मात्रा
पानी	92.0 ग्राम
ऊर्जा	20 कि. कैलोरी
प्रोटीन	1.3 ग्राम
वसा	0.3 ग्राम
खनिज	0.5 ग्राम
रेशा	3.0 ग्राम
कार्बोहायड्रेट	2.5 ग्राम
कैल्शियम	30 मिली ग्राम
फॉस्फोरस	40 मिली ग्राम
आयरन	1.7 मिली ग्राम
कैरोटीन	153 माइक्रो ग्राम
पोटैशियम	83 मिली ग्राम
थायमिन	0.05 मिली ग्राम
राइबोफ्लेविन	0.06 मिली ग्राम
नियासिन	0.5 मिली ग्राम
विटामिन सी	29 मिली ग्राम

कि इसकी उत्पत्ति भारत में हुई है। इसको पश्चिम बंगाल, ओडिशा, आसाम, बिहार, झारखण्ड एवं उत्तर प्रदेश में बहुतायत से उगाया जाता है। इसका सर्वाधिक उत्पादन बिहार राज्य से होता है।

वानस्पतिक वितरण: परवल का वंश ट्रायकोसेन्थस एवं प्रजाति डाइवोका है। परवल उष्ण कटिबंधीय, बहुवर्षीय एकलिंगाश्रयी एवं लतादार शाकीय फसल है। पौधे कि लम्बाई 6-8 मीटर होती है। जिसे एक बार लगाने के बाद उसी स्थान पर कई वर्षों तक पुष्पन एवं फलत करता है। इसकी पत्तियां हृदयाकार, लंबी एवं आधार पर सकरी होती हैं। पत्तियां के कक्ष से तंतू निकलते हैं। इसकी जड़ें कन्दील एवं लंबी होती हैं। जड़ें एवं तना दोनों में नये पौधे को जन्म देने कि क्षमता होती है। इसकी लताएं पेन्सिल के आकर कि गहरी हरी होती हैं। यह एक एकलिंगाश्रयी पौधा है अर्थात नर एवं मादा पुष्प अलग-अलग पौधे पर आते हैं। पत्तियो के कक्ष से नर एवं मादा पुष्प विकसित होते हैं। नर पुष्प शीघ्र आना प्रारम्भ होते हैं जबकि मादा पुष्प देर से आते हैं। अच्छी फलन के लिए नर एवं मादा पौधों का अनुपात 1:10 रखा जाता है। मादा पुष्प में 1-5 अण्डज (सामान्यत 3 तक) विकसित होते हैं। इसके पुष्प नलिकाकार एवं सफेद रंग के होते हैं जिसमें प्रथम पुष्पन कलिका निकलने से 16-20 घंटे बाद होता है जबकि मादा पुष्प 10-15 घंटे बाद निकलते हैं। अगर तापमान कम है तो पुष्पों का विकास 8-10 घंटे देरी से होता है। परवल के नर व मादा पुष्प के खिलने का समय 7-9 बजे सुबह होता है। मादा पुष्प खिलने के 8-10 घंटे पूर्व से लेकर 48-50 घंटे पश्चात तक वर्तिकागत सुग्राह्य बना रहता है।

फल गोलाकार या अंडाकार, चिकना 5.0-12.0 सेंटीमीटर लंबा तथा 2.0-6.0 सेंटीमीटर व्यास के होते हैं। इसका फल पेपो कहलाता है। फल का गुदा सफेद या क्रिमी सफेद होता है जो पकने पर पीले रंग का हो जाता है। फल पर कभी-कभी धरियां बनती हैं। इसका खाने वाला भाग पेरिकार्प तथा मीजोकार्प का संयुक्त भाग होता है। इसके गुदे में सख्त बीज बनते हैं बीज गोलाकार होते हैं जिसे ग्लोबोज कहा जाता है तथा बीज काले रंग के होते हैं।

जलवायु: परवल कि खेती के लिए आर्द्र एवं गर्म जलवायु कि आवश्यक्ता होती है। इसकी खेती सामान्यत: उन स्थानों पर होती है जहाँ औसतन तापमान 25-35 डिग्री सेल्सियस तथा औसतन वार्षिक वर्षा 1500-2000 मिमी होती है। पौधे की अच्छी पैदावार के लिए 21-27 डिग्री सेल्सियस तथा फलन के लिए 21-24 डिग्री सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त माना जाता है। अगर तापमान 5 डिग्री सेल्सियस से नीचे आ जाता है तो पौधों का विकास प्रभावित होता है। इसलिए ज्यादा ठंडक पड़ने पर पौधों का ऊपरी भाग सूख जाता है और सुसप्तावस्था में चला जाता है। जब तापमान मध्य फरवरी के महीने में बढ़ने लगता है तो पौधे में वृद्धि होने लगती है। पौधे में फलन फरवरी-मार्च से लेकर अक्टूबर-नवम्बर तक चलता है। परवल कम पानी में वृद्धि कर सकती है परन्तु जलमग्न अवस्था में सड़ कर समाप्त हो जाती है।

भूमि की तैयारी: यह बहुवर्षीय सब्जी है जिसे एक बार पर लगाने पर 3-4 वर्षों तक लगातार उपज मिलती है। अत: मृदीय संरचना एवं उर्वकता का प्रभाव इसकी उपज पर पड़ता है। अत: ऐसी मृदा जिसकी संरचना बलुई दोमट तथा कार्बनिक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में हो इसकी खेती के लिए उत्तम होती है। मृदा का पी. एच. मान 6.0-6.5 तक उत्तम है। इसकी खेती नदियों के किनारे अधिक मात्रा में कि जाती है क्योंकि मृदा कि उर्वरता ज्यादा होती है।

खेत तैयार करने के लिए मई-जून के महीने में 2-3 बार गहरी जुताई कर पाटा चलाना चाहिए। पुन: जून-जुलाई में 2-3 बार गहरी जुताई हैरो या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। खेत की अन्तिम जुताई के समय 20.0-25.0 टन प्रति हेक्टेयर गोबर कि सड़ी खाद या वर्मी कम्पोस्ट मिलना चाहिए।

उन्नत किस्में: परवल की अनेक स्थानीय किस्में पायी जाती है। इनमें से प्रमुख किस्में काशी अलंकार, स्वर्ण

अलौकिक, राजेंद्र परवल-1, राजेंद्र परवल-2, फैजाबाद परवल-1, फैजाबाद परवल-2, फैजाबाद परवल-3 और काशी जागृति है।

परवल की अनेकों स्थानीय किस्में क्षेत्र विशेष में उगाई जाती है इन्ही के आधार पर निम्नलिखित 4 वर्गों में बटा है।

वर्ग १ - इस वर्ग में वे किस्में आती है। जिसके फल 10-13 सेंटीमीटर लंबे व गहरे हरे रंग के होते हैं।

वर्ग २ - इस समूह के किस्म के फल की लम्बे 10 -16 सेंटीमीटर होती है। छिलके हरे रंग के और उस पर हलकी सी पिले रंग की पट्टी होती है।

वर्ग ३ - इस वर्ग के फलों की लम्बाई 5-8 सेंटीमीटर होती है।

वर्ग ४ - इस समूह के फलों की लम्बाई वर्ग 3 सेंटीमीटर से कम होती है। छिलके गहरे हरे रंग के और दोनों किनारा नुकीला होता है।

१. स्वर्ण आलौकिक

इस किस्म को झारखंड, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में खेती के लिए उपयुक्त माना गया है। इसकी रोपण का समय 15 सितंबर - 15 नवंबर है तथा इसकी उपज 25-30 टन/ हेक्टेयर होती है।

२. स्वर्ण रेखा

इस किस्म को झारखंड, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में खेती के लिए उपयुक्त माना गया है। इसकी रोपण का समय 15 सितंबर - 15 नवंबर है तथा इसकी उपज 30-35 टन/ हेक्टेयर होती है।

३. काशी अलंकार

यह किस्म भारतीय सब्जी अनुसन्धान संस्थान वाराणसी से आया है। इसके फल लंबे और हलके रंग के होते हैं। फलों में बीज की मात्रा कम और गुदा ज्यादा होती है।

४. राजेंद्र परवल १

इस किस्म का विकास राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय सबौर (बिहार) से किया गया है। इसके फल बड़े और पट्टीदार हरे रंग के होते हैं। इसकी औसत उपज 14.0-15.0 टन प्रति हैक्टर है।

५. राजेंद्र परवल २

इस किस्म का विकास राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय सबौर (बिहार) से किया गया है। इसके फल गहरे हरे रंग तथा सफेद पट्टीदार होतें हैं।

६. फैजाबाद परवल १

परवल की इस किस्म की विकास नरेंद्र देव कृषि एवं प्रद्यौगिकी विश्वविद्यालय फैजाबाद से किया गया है। इसके फल आकर्षक और हरे रंग के होते हैं।

७. फैजाबाद परवल ३

परवल की इस किस्म की विकास नरेंद्र देव कृषि एवं प्रद्यौगिकी विश्वविद्यालय फैजाबाद से किया गया है। इसके फल आकर्षक और ताकुआनुमा हरे रंग के तथा कम पट्टीदार होते हैं।

८. फैजाबाद परवल ४

परवल की इस किस्म का विकास नरेंद्र देव कृषि अवं प्रद्यौगिकी विश्वविद्यालय फैजाबाद से किया गया है व इसके फल ताकुआनुमा हरे रंग के तथा किनारे पर पतले होते हैं।

९. काशी जाग्रति

यह किस्म भारतीय सब्जी अनुसन्धान संस्थान वाराणसी (उत्तर प्रदेश) से आया है। इसके फल लंबे और हल्के रंग के होते हैं। इस फल में बीज नहीं बनता है और लगाते समय नर पोधों को आवश्यकता नहीं होती है। औसत उपज 8-10 टन प्रति हैक्टर है।

पौध प्रसारण: परवल का प्रसारण बीज एवं वानस्पतिक दोनों विधियों द्वारा किया जाता है।

१. बीज द्वारा प्रसारण

सामान्यतया बीज द्वारा प्रसारण नही किया जाता है क्योंकि इसमें 50 प्रतिशत पौधे नर आते हैं तथा पुष्पन एवं फलत कि क्रिया देर से आरम्भ होती है। अगर बीज द्वारा प्रसारण किया जाता है तो बीज कि बुआई जून-जुलाई महीने में की जाती है तथा एक हेक्टेयर के लिए 20-25 किग्रा. बीज की आवश्यक्ता होती है।

२. वानस्पतिक विधियां

क. जड़ कर्तन द्वारा प्रसारण: इस विधि को अधिकतर किसानों द्वारा अपनाया जाता है। इस विधि में एक वर्ष पुरानी तना कि लताओं से विकसित जड़ें खेत में जगह-जगह स्वत: तैयार होती हैं जिसे किसान खुदाई कर वांछित दूरी पर खेत में लगाते हैं।

ख. तना कर्तन द्वारा प्रसारण परवल के प्रसारण के लिए इस विधि का प्रयोग व्यावसायिक रूप से किया जाता है। इस विधि से प्रसारण करने के लिए 60-90 सेंटीमीटर लम्बे तने जिसमे 10-15 गांठें हो उत्तम मानी जाती है। इस प्रकार पौध प्रसारण अक्टूबर के महीने में बड़े पैमाने पर किया जाता है। शीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में एकवर्षीय पूर्णतया पके तने को लेकर पौध तैयार करके मुख्य खेत में लगाते है।

ग. पौधशाला में परवल की पौध तैयार करना कभी कभी परवल की पौध को पौधशाला में तैयार किया जाता है। इसके लिए पालीथिन की 15x10 सेंटीमीटर आकर के 100 गेज मोटी थैलियों का उपयोग किया जाता है। इन थैलियों में मिट्टी, बालू एवं सड़ी हुई गोबर की याद 1:1:1 के अनुपात में मिलाकर मिश्रण को इनमे भर जाता है। इसमें मात्र 15.0 सेंटीमीटर लम्बे तने ही लगाये जाते है। जिनमें 4-5 गांठें हों। पौधों में जमाव 30 दिन के अंदर आरम्भ हो जाता है और 45 दिन के अंदर जड़ें विकसित हो जाती है। थैली भरते समय ध्यान रखना चाहिए की उसमे 4-5 छिद्र थैली के निचे एवं बाहरी दीवारों पर करना चाहिए। जिससे अतिरिक्त पानी देने पर आसानी से बाहर निकल जाये। इस प्रकार 2-3 महीने में लगाने योग्य पौध तैयार हो जाती है। इस विधि द्वारा तैयार पौधा का रोपण करने से मुख्य खेत में शत प्रतिशत पौध स्थापित की जा सकती है।

पौध रोपण का समय: परवल लगाने का उत्तम समय मध्य नक्षत्र है जो अगस्त के आस पास होता है। नदियों के किनारे (दियारा में) परवल को अक्टूबर-नवम्बर में लगाया जाता है। दियारा क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष नई फसल लगानी पड़ती है क्योंकि बाढ़ में फसल नष्ट हो जाती है।

रोपण विधि एवं अंतराल: परवल को दो विधियों द्वारा लगाया जाता है-

सीधी लता विधि: इस विधि में 30 सेंटी मीटर गहरी नालियां बनाई जाती हैं और नाली में पर्याप्त मात्रा में खाद मिलाया जाता है। इन्ही नालियों में 2 मीटर के अंतराल पर भूमि कि सतह से 15 सेंटीमीटर की गहराई पर लम्बाई में फैलाकर कलमें रोप दी जाती हैं। इस विधि में एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में 2500 कलमें लगती हैं।

थाला विधि: इस विधि से रोपाई के लिए 2-2 मीटर के अंतराल पर ऊँचे उठे हुए थाले बनाये जाते हैं। कलमों की लच्छि बनाकर इन्हीं थालों में लगाई जाती हैं।

नर व मादा पुष्प का अनुपात: एकलिंगी पौधा होने के कारण परवल का अनुपात सही होना आवश्यक है। जब खेत में नर व मादा पौधा का अनुपात सही नहीं होता तो मादा पुष्प बिना परागण के हल्के पीले अंत में भूरे रंग के होकर गिर जाते हैं। जिससे उपज प्रभावित होती है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि नर पौधों से उपज प्राप्त नहीं होती है परन्तु ये परागण के लिए आवश्यक होते है और बिना परागण के मादा से उपज लेना असम्भव है। अत: खेत में नर व मादा पौधों का अनुपात 1:10 का होना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: खेत की तैयारी के समय के समय 10-15 टन सड़ी हुई गोबर खाद मिला दी जाती हैं। मेड़ों पर 40x40x40 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे बनाते हैं। प्रत्येक में 4-6 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्राम

यूरिया, 100 ग्राम डी. ए. पी. तथा 80 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश, 100 ग्राम नीम की खली मिलाकर भर देते हैं। पुनः मई व जुलाई के महीने में गुड़ाई करने के बाद प्रत्येक पौधे को 80 ग्राम यूरिया देते हैं तथा मिट्टी चढ़ा देते हैं। इसी मात्रा में खाद व उर्वरक दूसरे व तीसरे वर्ष में फलत लेने के लिए देते है।

सिंचाई व अन्य सस्य क्रियायें: रोपण के पश्चात हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है, जिससे कलम सूखने से बची रहे एवं अच्छे से स्थापित हो जाये। बरसात के मौसम में नियमित बरसात होने से सिंचाई रोक देते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की लताओं के सुचारू रूप से बढ़ने के लिए आवश्यक है, की खेत की निराई - गुड़ाई की जाये।

सहारा देना: परवल की लताओं को बांस, लकड़ी या मचान पर चढ़ाने से फलत अच्छी होती है एवं फलों की तुड़ाई में भी काफी सुविधा मिलती है। इसके लिए जब बेलें जब 30 सेंटीमीटर की बढ़वार की हो जाए उस समय रस्सी के सहारे मचान पर चढ़ा देना चाहिए।

कटाई-छटाई: जाड़े में परवल की बेलें सूखने लगती हैं और पौंधो सुसुप्तावस्था में चले जाते हैं। इसलिए लताओं की कटाई अक्टूबर-नवम्बर माह में मुख्य तने के पास 10-15 सेंटीमीटर भाग को छोड़कर काट दिया जाता है। तने के पास गोबर की सड़ी हुई खाद डालकर पुआल से ढक देते हैं।

फल की तुड़ाई एवं उपज: परवल के पौधे जो पहली बार अक्टूबर-नवम्बर माह में लगाये जाते हैं। वे अप्रेल -मई महीने में फलत में आ जाते हैं और सितम्बर-अक्टूबर तक फलते रहते हैं, जबकि नदियां के किनारे दियारा में लगाये गए पौधों पर फल फरवरी में ही आने लगते हैं। पौधों पर फल लगने के 15 दिन बाद पूर्ण विकसित फलों की तुड़ाई करनी चाहिए। समय से फलों की तुड़ाई करते रहने से फल अधिक संख्या में लगते रहते हैं। पहले वर्ष औसतन उपज 10-12.5 टन तथा दूसरे वर्ष 22-25 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

एन्थ्रेक्नोज (Antracnose): यह एक फफूंद जनित रोग है। प्रारम्भ में रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियों पर छोटे छोटे पीले धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग से बचाव के लिए मेंकोजेब की 2.5-3.0 ग्राम मात्रा प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

चूर्णिल असिता (Powdery meldew): यह भी एक फफूंद जनित रोग है। रोग से प्रभावित पौधे की पत्तियों की सतह पर गोल सफेद पाउडर जैसे धब्बे बनते है, जो आकर व संख्या में तेजी से बढ़ते हैं और कभी कभी पूर्ण रूप से पती को ढक लेते है। 1.5 ग्राम/लीटर पानी में रोग से बचाव के लिए केराथेन नामक दवा की छिड़काव करना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि छिड़काव से पहले खाने योग्य फलों कि तुड़ाई कर लें।

प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

कद्दू का लाल कीड़ा (Red Pumpkin Beetle)

इस रोग का प्रकोप परवल के कल्ले प्रस्फुटित होते ही आरम्भ हो जाता है। इस रोग में कीड़ा पौधों की कलमों की नई कोमल पत्तियों को खाकर पौधों को नुकसान पहुंचता है, जिसके फलस्वरूप पौधे आरम्भ से ही कमजोर हो जाते हैं। रोग से बचाव के लिए कार्बेरिल की 2.0 ग्राम मात्रा प्रति लीटर की दर से पानी में घोलकर 15-20 दिन के अंतराल में 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।

फल मख्खी (Fruit fly)

इसमें जवान मक्खी विकासशील कोमल फलों में होल (छेद) करके फल के छिलके के निचे अंडे देती है, जिससे इसका लार्वा (डिम्ब) फल के अन्दर वृद्धि कर फलों को खाकर नष्ट कर देता है। इस रोग से बचाव के लिए कीटों को आकर्षित करके भी मारा जा सकता है। इसके लिए मेलाथियान की 20 मिलीलीटर मात्रा को 200 ग्राम गुड़ के साथ 20 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से कीट आकर्षित होते हैं और चूसकर मर जाते हैं। इसका छिड़काव 1 हेक्टेयर में से कुछ (200-300) पौधों पर ही करना चाहिए।

थ्रिप्स (Thrips)

थ्रिप्स आकर में छोटे व पंखहीन सफेद रंग के कीट होते हैं, जो पत्तियों का रस चूसकर फसल को कमजोर कर देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। बचाव के लिए मोनोक्रोटोफॉस की 1.5 मिली लीटर की मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर 15–20 दिन के अंतराल में 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।

स्टेम बोरर

यह कीट पौधों के मुख्य तने पर छेद बनाकर अंदर चला जाता है और अंदर सुरंग बनाकर पौधों की खाद्य आपूर्ति बंद कर देता है जिससे पौधा का शिखर सुख जाता है। इससे बचाव के लिए 10 –15 ग्राम फ्यूराडोन 3 जी. का दाना प्रत्येक पौधों के जड़ के पास 30–40 दिन के अंतराल पर 2 बार डालते हैं। फ्यूराडोन का प्रयोग फल लगने के समय नहीं करते हैं।

फल का पिला पड़ना

प्राय: ऐसा देखा जाता है की परवल का फल लगते ही पिला हो जाता है। जो पका जैसा दिखाई देता है और बाद में पौधे से टूट कर गिर जाता है। इसका दो प्रमुख कारण है।

- नर फूल की कमी के कारण परागण व गर्भाधान क्रिया का न होना ऐसी दशा में नर व मादा पौधों को 1:10 अनुपात में लगा कर फल का पीला होना रोका जा सकता है1 इसके अलावा यह सावधानी रखनी चाहिए की फूल आने के समय किसी प्रकार के कीटनाशी दवा का प्रयोग दिन के समय न करें अन्यथा परागण करने वाली मधुमक्खियाँ के मरने का डर रहता है इसी कारण कीटनाशकों का प्रयोग सायंकाल करना चाहिए।
- फल मक्खी द्वारा विकसित हो रहे कोमल फलों के छतिग्रस्त होने से फल पिले पड़ जाते हैं। इसके लिए फल मक्खी का नियंत्रण करें। नियंत्रण के लिए मेलाथिओन की 15 मिली लीटर मात्रा के साथ 200 ग्राम गुड़ को 20 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से कीट आकर्षित होते हैं और खाकर मर जाते हैं। इस दवा का छिड़काव 1 हैक्टर में 200–300 पौधों पर किया जा सकता है।

□□

पोषण से सुरक्षाः सबसे अहम जरूरत एवं कुपोषण से बचने के उपाय

वर्षा सिंह[1], जे.पी.एस. डबास[2], सुनीता सिंह[3] एन.वी. कुम्भारे[4]

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ, होम साइंस (फूड एवं न्यूट्रीशन) दीन दयाल शोध संस्थान
चित्रकूट, कृषि विज्ञान केंद्र मझगांव, सतना, म.प्र.
[2]प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक डी.बी.टी परियोजना कटैट
भाकृअनुप-भा.कृ.अनु.सं नई दिल्ली-12
[3]डी-18, साइंटिस्ट अपार्ट्मेंट आईएआरआई, पूसा कैम्पस, नई दिल्ली-12
[4]प्रभारी, वरिष्ठ वैज्ञानिक, एटिक, भाकृअनुप- भा.कृ.अनु.सं नई दिल्ली-12

पोषण कितना जरूरी है, इसे देश की मौजूदा परिस्थितियों से समझा जा सकता है। जितनी ताकत अन्न ग्रहण करने में है, उतनी ही ताकत अन्न त्यागने में भी है। अन्न त्यागने की ताकत से पूरे देश में हलचल पैदा हो सकती है। बहरहाल अन्न का मानव संस्कृति सभ्यता की शुरूआत से ही नाता है। जैसे-जैसे संस्कृति पुष्ट होती रही है वैसे-वैसे ही अन्न, भोजन, पोषण में भी कई स्तरों पर बेहतर होते जाने की कवायद चलती रही है। पोषण सुरक्षा को मानव सभ्यता की शुरूआत से ही देखा जाता रहा है। किसी भी प्राणी के लिए पोषण जरूरी है, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरी है कि संतुलित पोषण कैसे हो?

कितना पोषण है जरूरी

इंडियन कांउसिल फॉर मेडिकल रिसर्च (आई सी एम आर) ने एक व्यक्ति के लिए कितना पोषण जरूरी है, उसे कैलोरी के अनुसार मापदंड तय किया है। आईसीएमआर के मुताबिक एक औसत भारतीय के लिए भारी काम करने वालों के लिए रोजाना 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति और कम शारीरिक श्रम करने वाले लोगों के लिए 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति पोषण जरूरी है। पोषण सुरक्षा का मतलब यह भी है कि किसी भी व्यक्ति की अपने जीवन चक्र में ऐसे विविधता पूर्ण पर्याप्त मात्रा में भोजन की पहुंच सुनिश्चित होना जिसमें जरूरी कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, सूक्ष्म पोषण तत्व की उपलब्धता हो। इन तत्वों की आपूर्ति अलग-अलग तरह के अनाजों, दालों, तेल, दूध, अण्डे, सब्जियों और फलों से होती है, इसलिए इनकी उपलब्धता और वहन करने की परिस्थितियां बननी चाहिये। इसी तारतम्य में पीने के साफ पानी की उपलब्धता भी जरूरी है। साफ पानी से भोजन के पचनें एवं अवशोषण में सहायता मिलती है तथा शरीर को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं।

पोषण सुरक्षा पर राज्य की संवैधानिक बाध्यताएं

भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 हर एक के लिए जीवन और स्वातंर्त्यता का मौलिक अधिकार सुनिश्चित करता है। इस अनुच्छेद के तहत उपलब्ध जीवन और स्वातंत्रर्त्यता के अधिकार में भोजन का अधिकार सम्मिलित है। वहीं संविधान का अनुच्छेद 47 कहता है कि लोगों के पोषण और जीवन के स्तर को उठाने के साथ ही जनस्वास्थ्य को बेहतर बनाना राज्य की प्राथमिक जिम्मेदारी है।

- मानव अधिकारों पर जारी अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र (1949) की धारा-25 हर व्यक्ति के लिये पर्याप्त भोजन के अधिकार को मान्यता देती है।
- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय सहमति दस्तावेज की धारा-11 (1966) और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की समिति हर व्यक्ति को भूख से मुक्त रखने के संदर्भ में राज्य की जिम्मेदारियों की विस्तार से व्याख्या करती है।
- इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकार समझौते (धारा-271 और 273) और महिलाओं के खिलाफ होने वाले हर तरह के भेदभाव की सामाप्ति के लिये सम्मेलन (सीडा) के घोषणा पत्र (धारा-12) महिलाओं और बच्चों की खाद्य-पोषण सुरक्षा के बारे में राज्य की जिम्मेदारी को स्पष्ट करते हैं। राज्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए कमजोर वर्ग के लोगों को सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराता है। इसके साथ ही आईसीडीएस और मध्याह्न भोजन (मिड डे मील) के जरिए बच्चों को पोषण सुरक्षा प्रदान की जा रही है।

कुपोषण का कारण

अत्यधिक गरीबी, संसाधनों की कमी, रोजगार का अभाव, पीने के साफ पानी की कमी, अस्वास्थकर स्थितियों में रहन सहन आदि हैं। उचित मात्रा में अनाजों, फलों, सब्जियों, मांस तथा डेयरी उत्पादों की कमी आदि हैं।

पोषण का महत्व

सही पोषण से बच्चों की बढ़त अच्छी होती है और मष्तिस्क का विकास होता हैं। सही पोषण से बीमारियों से लड़ने की शक्ति मिलती है और बार-बार बीमार नहीं पड़ते। पोषण से ही बार-बार बीमार होने से बचा जा सकता है और कुपोषण के दायरे से मुक्ति भी पाई जा सकती है। सही पोषण से बीमारी नहीं होती, इसका असर एक व्यक्ति के जीवन पर देखने को मिलता है, उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है, बच्चों की एकाग्रता बढ़ जाती है और पढ़ाई में मन लगता है। देश का बेहतर भविष्य सुनिश्चित होता है।

कुपोषण के दुष्प्रभाव एवं परिणाम

महिलाओं और किशोरियों में खून की कमी बड़ी चुनौती है। भारत में खून की कमी या एनीमिया बहुत आम बीमारी है। देश में 6 से 59 माह की आयु वर्ग में हर दस में सात बच्चे 69 प्रतिशत खून की कमी के शिकार हैं। इनमें से चालीस प्रतिशत बच्चे मामूली तौर पर और तीन प्रतिशत बच्चे गंभीर रूप से प्रभावित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं, युवतियां व बच्चे एनीमिया से ज्यादा पीड़ित हैं। एन एफ एच एस के दूसरे सर्वेक्षण से तीसरे सर्वेक्षण में एनीमिया 74 प्रतिशत से बढ़कर 79 प्रतिशत पाया गया था। मां में खून की कमी का प्रभाव उनकी संतान पर सीधे रूप से पड़ता है। सर्वेक्षण में पाया गया है कि जिन माताओं को एनीमिया था उनमें से 54.4 प्रतिशत शिशुओं में भी खून की कमी थी। मध्य प्रदेश बिहार के बाद दूसरा राज्य है जहां बच्चों में सबसे ज्यादा एनीमिया है। किशोरी युवतियों में भी यह एक गंभीर बीमारी है, यहां हर दस में से छह युवतियां एनीमिया का शिकार हैं।

बच्चों में कुपोषण

देश में बच्चों की आधी आबादी कुपोषण का शिकार है। 24 प्रतिशत बच्चे गंभीर कुपोषण का शिकार हैं। मध्यप्रदेश में हाल ही में राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद ने अध्ययन किया है। इस अध्ययन में पाया गया है कि मध्यप्रदेश में ग्रामीण क्षेत्र में 51.9 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। एन.एफ.एच.एस के तीसरे सर्वे के मुकाबले यहां लगभग दस प्रतिशत कुपोषण कम पाया गया हैं। यह एक सुखद संकेत हो सकता है, लेकिन एक चुनौती भी है, क्योंकि प्रदेश में आधे से ज्यादा बच्चे अब भी कुपोषण के संकट में अपनी जिंदगी से संघर्ष कर रहे हैं। इसके लिए जरूरी है कि उनके पोषण और सुरक्षा पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया जाए।

कुपोषण के प्रकार और मप्र में हालात कुपोषण की तीन तरीकों से पहचान हो सकती है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान के ताजा अध्ययन के मुताबिक मध्य प्रदेश में 51.9 प्रतिशत बच्चे (अंडरवेट), कम भार वाले, 48.9 प्रतिशत बच्चे स्टंटिंग (उम्र के साथ ऊचाई के अनुपात में कम वजन) और 25.8 प्रतिशत बच्चे (वास्टिंग) लम्बाई के अनुपात में भार कम होना श्रेणी में आ रहे हैं।

मानव अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र की सर्वव्यापी घोषणा कहती है, हरेक को अपने व अपने परिवार की भलाई व स्वास्थ्य हेतु ऐसे पर्याप्त जीवन-स्तर का अधिकार है जिसमें रोटी, कपड़ा, मकान व स्वास्थ्य सेवा व आवश्यक सामाजिक सुविधाएं शामिल हैं

बाल-अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र प्रतिज्ञा-पत्र (1989) का अधिनियम 24 पोषण-सम्बंधी बच्चों के अधिकार की साफ तौर पर व्याख्या करता है। यह प्रतिज्ञा-पत्र कहता है, सारे गवाह राज्य इस अधिकार के पूर्ण क्रियान्वयन हेतु जतन और खास तौर पर इस बाबत उपयुक्त कदम उठाएं, रोग एवं कुपोषण से निपटने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य ढांचे के तहत अन्य बातों के साथ-साथ तुरन्त उपलब्ध टेक्नोलॉजी का प्रयोग व पर्याप्त पौष्टिक आहार व पीने का साफ पानी मुहैया कराना।

- **अंडरवेट (कम वजन):** इसको आयु के हिसाब से कम वजन होने के नजरिए से देखा जाता है। यह सबसे ज्यादा पाया जाने वाला कुपोषण है। उम्र के हिसाब से वजन कुपोषण मापने का एक सामान्य मापदंड है, लेकिन इसमें उंचाई को शामिल नहीं किया जाता है।
- **स्टंटिंग (ऊंचाई के अनुपात में कम वजन):** इसे उम्र के हिसाब से ऊंचाई के मान से परिभाषित किया जाता है। यह मानक किसी भी शिशु के पूर्व में पोषण को प्रतिबिम्बित करता है।
- **वास्टिंग (ऊंचाई के अनुपात में कम वजन):** इस मानक का मतलब यह है कि ऊंचाई के मुताबिक वजन कितना है। वास्टिंग को बच्चे की उम्र जाने बिना उसके वजन के मान से समझा जाता है।

शिशुओं की जरूरतें क्या हैं?

स्तनपान शिशु का सर्वोत्तम पोषण है। विशेषज्ञों का मानना है कि जन्म के 1 घंटे के भीतर स्तनपान की शुरूआत शिशु के पूरे जीवन के लिए बुनियाद का काम करती है। इसी तरह छह माह की उम्र तक एक्सक्लूसिव स्तनपान बच्चे को कई बीमारियों से बचाने का काम करता है। राष्ट्रीय पोषण संस्थान के सर्वेक्षण में भी मध्य प्रदेश में संस्थागत प्रसव को बढ़ाने की दिशा में उल्लेखनीय काम हुआ है और अब यहां लगभग 78 प्रतिशत प्रसव स्वास्थ्य संस्थाओं में हो रहे हैं, लेकिन जन्म के पहले घंटे में स्तनपान का प्रतिशत केवल 26.4 है। यह अब भी ज्ञान के अभाव में चुनौती बना हुआ है। इस दिशा में व्यापक जनचेतना की आवयकता है।

शिशुओं की पोषण सुरक्षा के क्या मायने हैं?

1. शिशु और छोटे बच्चों के भोजन के संदर्भ में कौशलपूर्ण सहायता और सलाह का दिया जाना।
2. बच्चे के जन्म के 6 माह बाद तक माता को आर्थिक और पोषण सहायता दिया जाना।
3. समुदाय और कार्यस्थल पर समस्त सेवाओं और सामग्री सहित झूलाघर।

पोषण सुरक्षा के लिए नीतिगत व्यवस्थाएं

राष्ट्रीय बाल नीति- 1974

एकीकृत बाल विकास परियोजना आई.सी.डी.एस- 1975

- राष्ट्रीय पोषण नीति- 1993
- नेशनल प्लान ऑफ एक्शन फॉर न्यूट्रीशन- 2005
- एनीमिया को रोकने के लिए विशेष योजना, आइरन टेबलेट के संदर्भ में
- देश के सभी शासकीय प्राईमरी स्कूलों में मध्याह्न भोजन योजना
- 9 माह से 3 साल तक के बच्चों को विटामिन ए की विशेष खुराक

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली

बच्चों के लिए पूरक पोषण आहार छह माह बाद क्यों देना चाहिए?

- छः महीने के बच्चे की शारीरिक जरूरतें बढ़ जाती है इसलिए मां के दूध के साथ ऊपरी आहार की शुरूआत करना आवश्यक है।
- बच्चे का शारीरिक हलचल बढ़ जाती है जिसके लिये अधिक ताकत की आवश्यकता होती है, इसलिए मां के दूध के साथ ऊपरी आहार की जरूरत होती है।
- छः माह की आयु से अधिक का बच्चा ऊपर का आहार पचा सकता है।
- छः माह के बच्चे में स्वाद के तंतु विकसित हो जाते हैं। निगलने और चबाने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

छः माह से पहले क्यों नहीं आहार देना चाहिए।

- इससे बच्चे को माँ का दूध पूरा नहीं मिल पायेगा। अतः 6 माह तक जो ऊर्जा प्राप्त होनी थी, उसमें कमी हो जाएगी। बच्चे का आमाशय छोटा होता है, यदि उसे तरल पदार्थ से भर दिया जाता है, तो उसे पोषकता नहीं मिल पाती है।
- यदि ऊपरी आहार ज्यादा तरल एवं कम पोषकता वाले होते हैं, तो बच्चा कमजोर हो सकता है।
- बच्चे को बीमारी का खतरा बढ़ जाएगा। समय के पूर्व ऊपरी आहार कम सुरक्षित एवं पचने में आसान नहीं होता है।
- माता के पुनः गर्भवती होने के अवसर बढ़ जाते हैं।

ऊपरी आहार क्यों देना चाहिए

- 6 माह की उम्र तक मां के दूध से आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होती है।
- 6 माह के बाद मां के दूध के अलावा अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता बच्चे को होती है।
- इस तरह 6 महीने के बाद बच्चों को मां के दूध के साथ ऊपरी आहार देना आवश्यक होता है। इस उम्र में बच्चे की पाचन संस्थान भोजन पचाने के लिए भी तैयार हो जाता है।

ऊपरी (बाहरी) आहार कैसा होना चाहिए

बच्चे को दिया जाने वाला ऊपरी आहार स्थानीय उपलब्ध खाद्य सामग्री में से होना चाहिए। इसमें कम से कम निम्नानुसार भोजन शामिल करने की कोशिश की जानी चाहिए।

- अनाज जैसे चावल, गेहूं, मक्का, बाजरा।
- स्टार्च युक्त सब्जी जैसे आलू, शकरकंद आदि और स्टार्च युक्त फल जैसे केला आदि।
- ऊपरी आहार सफाई से पकाया, परोसा एवं खिलाया जाना चाहिए।
- इसमें एक चम्मच घी या तेल अवश्य मिलना चाहिए।
- प्रायः ऊपरी आहार तरल करके बच्चे को दिया जाता है, ऐसा माना जाता है कि गाढ़ा भोजन बच्चे के गले में फंसेगा तथा अपच करेगा, इससे उसमें पानी आदि मिलाकर उसे पतला कर दिया जाता है। यह जरूरी है कि बच्चे की मां को उसे देने वाले भोजन के गाढ़ेपन की जानकारी दी जाए। भोज्य पदार्थ इतना गाढ़ा होना चाहिए, जो की चम्मच तिरछी करने पर धीरे-धीरे टपके। इतना पतला न हो कि तुरन्त ही बह जाए या इतना गाढ़ा न हो की चम्मच तिरछी करने पर गिरे ही न।

बच्चे को खाना देने की मात्रा

७ वें माह से- नरम दाल - दलिया, दाल - चावल, दाल - रोटी मसलकर अर्द्ध ठोस (चम्मच से गिराने पर सरके, बहे नहीं), खूब मसले साग एवं फल, प्रतिदिन दो

बार तथा मात्रा 2 - 3 भरे हुए चाय के चम्मच दें। स्तनपान जारी रखें। वनस्पतियाँ, अनाज, दालें एवं फलों के साथ मांस, मछली एवं अण्डा यदि खाते हैं तो अवश्य शामिल करें तथा नियमित स्तनपान भी जारी रखें।

८-९ वें माह से - नरम दाल - दलिया, दाल - चावल, दाल - रोटी, प्रतिदिन धीरे - धीरे मात्रा बढ़ाते हुए नियमित स्तनपान के साथ 2-3 बार चम्मच से 250 मिली. या प्रत्येक भोजन में 3.5 कप अवश्य शामिल करें एवं टुकडों में फल भी अवश्य दें। दूध, दूध से बने पदार्थ, अनाज, दालें एवं फलों के साथ मांस, मछली एवं अण्डा यदि खाते हैं तो अवश्य शामिल करें तथा नियमित स्तनपान भी जारी रखें।

९-११ माह- नरम दाल - दलिया, दाल - चावल, दाल - रोटी, प्रतिदिन धीरे - धीरे मात्रा बढ़ाते हुए अच्छी तरह कटे हुए फल एवं बिना मसला हुआ आहार दिन में तीन बार दें तथा नियमित स्तनपान जारी रखें। एक बार में 250 मिली. का कप आहार भरकर बच्चा प्रत्येक भोजन में ग्रहण करें।

१२ माह - ५ वर्ष - घर पर पका पूरा खाना, धुले एवं कटे फल, 3 भोजन तथा 2 नाश्ते के रूप में दें, एक बार में 250 मिली. का कप आहार भरकर बच्चा प्रत्येक भोजन में ग्रहण करें। स्तनपान के बीच में आहार देना चाहिए, नियमित स्तनपान जारी रखें।

- 6 माह तक जब बच्चा सिर्फ माँ का दूध पीता है, तब कि उसे किसी भी भोज्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु जब उसे ऊपरी आहार दिया जाता है, तब पेय पदार्थ देना आवश्यक होता है।
- पेय पदार्थ की मात्रा बच्चे को दिए गए भोजन के गाढ़ेपन एवं मां के दूध पर निर्भर करेगी।
- यदि बच्चा बार-बार हल्के पीले रंग की पेशाब करता है, तो उसे पर्याप्त पेय पदार्थ दिए जा रहे हैं। यदि कम तथा गहरे रंग की पेशाब करता है, तब उसे अधिक पेय पदार्थ देने की आवश्यकता है।
- बच्चे को दस्त लगने या बुखार आने पर उसे अधिक बार पेय पदार्थ देने चाहिए।
- पानी के अलावा फलों के रस भी बच्चों को दिए जा सकते हैं, परन्तु बच्चे के दांतों की सुरक्षा के लिए यह रस पानी मिलाकर पतले दिए जाने चाहिए। रस इतना नहीं देना चाहिए बच्चा अन्य भोज्य पदार्थ न खा सके।
- चाय या कॉफी बच्चे के आयरन के अवशोषण को कम करता है, नहीं देना चाहिए।
- कोई भी पेय पदार्थ शुद्ध और साफ होना चाहिए। पानी उबला हुआ तथा ढककर साफ बर्तन में रखना चाहिए। पानी निकालते वक्त उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए।

एनीमिया (खून की कमी) की जानकारी

नई रक्त कोशिकाओं के निर्माण हेतु जरूरी एक या एक से अधिक पोषक तत्वों की कमी से रक्त में हीमोग्लोबिन) लाल रक्त कणों) का स्तर सामान्य से कम होना। किशोरी बालिकाओं में हीमोग्लोबिन का स्तर 12 ग्राम 100 एम एल में से कम होने पर एनीमिया कहलाता है।

एनीमिया के लक्षण

जो व्यक्ति एनीमिया से पीड़ित होता है उसकी जीभ, आंखों व नाखुनों का रंग फीका दिखाई देने लगता है। उसके पैरों में सूजन होती है। साँस फूलना और थकान महसूस होने लगती है। थोड़ा सा काम करने पर कमजोरी महसूस होती है।

एनीमिया के कारण

एनीमिया मुख्यत: भोजन में आयरन या लौह तत्व की कमी होने के कारण होता है। किसी व्यक्ति को बार-बार मलेरिया हो तब भी व्यक्ति एनीमिया का शिकार हो सकता है। युवतियों और महिलाओं में माहवारी के दौरान अधिक खून बहना भी एनीमिया का

एक कारण है। परजीविक कारण और काम के हिसाब से पोषण की कमी भी एनीमिया के रूप में सामने आती है। बच्चों में एनीमिया मुख्यत: मां से ही मिलती है।

किशोरावस्था में एनीमिया के दुष्प्रभाव

किशोरावस्था में एनीमिया होने के दुष्प्रभाव एक व्यक्ति के पूरे जीवन में दिखाई पड़ता है। इससे कार्यक्षमता पर दुष्प्रभाव पड़ता है। भूख कम होने लगती है और सही पोषण नहीं मिलने से आयु के अनुसार शारीरिक वृद्धि नहीं हो पाती है। युवतियों में एनीमिया आगे जाकर उनकी गर्भावस्था को भी प्रभावित करती है और वह असुरक्षित मातृत्व के दौर से गुजरती हैं। यही कारण है कि यहां पर उच्च मातृत्व मृत्यु दर है। उनके बच्चे भी कम वजन के पैदा होते है, और कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।

आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया के नियंत्रण के तरीके

एनीमिया से बचने का सबसे आसान और सुरक्षित तरीका यह है कि भोजन में संतुलित आहार की मात्रा बढ़ाई जाए। आहार की गुणवत्ता और पौष्टिकता को बढ़ाकर ही एनीमिया से स्थायी रूप से मुक्ति पाई जा सकती है। इसके साथ ही मलेरिया से बचाव करके और सप्ताह में एक बार आयरन की गोली लेना भी फायदेमंद साबित हो सकता हैं कई चीजें ऐसी भी होती है जो भोजन में लौह तत्व के अभिशोषण को अवरूद्ध कर देती हैं। ऐसे पदार्थों से बचने की जरूरत है। आयरन युक्त आहार जैसे बाजरा, खजूर, गुड़, अंकुरित दालें, हरी पत्तेदार सब्जियां (जैसे पालक, मैथी, बथुआ) अण्डा, माँस, मछली इत्यादि ज्यादा से ज्यादा आहार में लेना होगा। विटामिन ''सी'' युक्त खाद्य पदार्थ जैसे- नींबू, आंवला, संतरा, अमरूद आदि लेने से आयरन के अवशोषण की क्षमता बढ़ जाती है। लोहे की कढ़ाई में खाना बनाने की सलाह भी विशेषज्ञों द्वारा दी जाती है। आयरन टेबलेट लेने के कुछ समय बाद कुछ मिचली अथवा काले रंग के दस्त होने की शिकायत हो सकती है। लेकिन ऐसी स्थिति में भी इन गोलियों का उपयोग बंद नहीं करना चाहिए।

राष्ट्रीय पोषण संस्थान (निन) हैदराबाद के सर्वे के मुताबिक मध्य प्रदेश में 78 प्रतिशत किशोरियों को आयरन फोलिक एसिड की टेबलेट मिल पा रही है। यानी लगभग 22 प्रतिशत महिला और किशोरियों को यह किसी भी रूप में नहीं मिल रही है। बड़ी चुनौती यह है कि कैसे हम सभी लोगों तक आयएफए टेबलेट पहुंचा सकें।

इंडियन कौंसिल फॉर मेडिकल रिसर्च के मुताबिक ५ सदस्यों के परिवार के लिए भोजन की मासिक जरूरत

सदस्य	अनाज (कि.ग्रा.)	दाल (कि.ग्रा.)	खाद्य तेल (ग्राम)
औसत मेहनत करने वाला पुरूष	14.4	27	1050
औसत मेहनत करने वाली महिला	10.8	2.25	900
1 से 6 वर्ष का बच्चा	5	1.1	675
7 से 12 वर्ष का बच्चा	9	1.8	750
बुजुर्गध तीसरा बच्चा	9	1.8	675
कुल	48.2	9.65	4050

मोटे अनाज की पौष्टिकता अन्य अनाजों की तुलना में ज्यादा होती है। प्रति किलो ग्राम मोटे अनाजों में पोषक तत्वों में निम्न मात्रा होती है।

अनाज	प्रोटीन (ग्राम)	रेशा (ग्राम)	मिनरल (ग्राम)	आयरन (मि.ग्राम)	कैल्शियम (मि.ग्राम)
बाजरा	10.6	1.3	2.3	16.9	38
रागी नाचनी	7.3	3.6	2.7	3.9	344
कांगभादी	12.3	8	3.3	2.8	31
कोदो	8.3	9	2.6	0.5	27
कुटकी	7.7	7.6	1.5	9.3	17
सावाबटी	11.2	10.1		15.2	11
चावल	6.8	0.2	0.6	0.7	10
गेहूं	11.8	1.2	1.5	5.3	41

सामुदायिक रेडियो: वर्तमान स्थिति एवं प्रासंगिकता

हेमन्त कुमार वर्मा, एम.एस. मीणा, सी. मीणा एवं एल. अभिषेक पालडिया
भा.कृ.अनु.प.-कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान, जोधपुर-342005

भारत में जहां एक तरफ एंटरटेंनमेंट मीडिया हर साल तरक्की की नई ऊंचाइयां छू रहा है, वहीं दूसरी तरफ एक बड़ी आबादी कम्यूनिटी रेडियो यानी सामुदायिक रेडियो के नाम से बहुत कम परिचित है। सामुदायिक रेडियो का दायरा बेहद छोटा होना और इसके प्रसारण और फायदा पाने वालों का बेहद आम और स्थानीय होना इसके प्रमुख कारण है। यह स्पष्ट है कि रेडियो की ताकत हमारी और आपकी सोच से भी परे है। निजी एफएम चैनल जहाँ बाजार को दृष्टिगत रखते हुये फिल्म संगीत, प्रायोजित कार्यक्रम तथा विज्ञापनों के प्रसारण द्वारा राजस्व कमाने की प्रतिस्पर्धा में जुटे है वही दूसरी और आकाशवाणी अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को स्वीकार करता है। देश भर में बिछे रेडियो चैनलों के जाल के बावजूद लगातार यह महसूस किया जाता रहा कि कुछ है जो छूट रहा है, छोटे समुदायों के प्रसारण हितों और अधिकारों का पूर्णतया संरक्षण नहीं हो पा रहा है। सम्भवत: इसीलिए भारत में सामुदायिक रेडियो को वैधानिक मान्यता मिलते ही कई समुदायों का ध्यान इस ओर गया है।

किसी छोटे समुदाय द्वारा संचालित कम लागत वाला रेडियो स्टेशन जो समुदाय के हितों, उसकी पसंद और समुदाय के विकास को दृष्टिगत रखते हुए गैरव्यावसायिक प्रसारण करता है, सामुदायिक रेडियो केन्द्र (स्टेशन) कहलाता है। यह संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम है। सामुदायिक रेडियों, सार्वजनिक सेवा और वाणिज्यिक मीडिया से अलग प्रसारण का महत्वपूर्ण तीसरा स्तर है। यह स्थानीय लोगों को उनके जीवन से संबन्धित मुद्दों को स्वर देने के लिए एक मंच मुहैया कराता है। ऐसे सामुदायिक रेडियो स्टेशन द्वारा कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, सामुदायिक विकास, संस्कृति सम्बन्धी कार्यक्रमों के प्रसारण के साथ-साथ समुदाय के लिए तात्कालिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा सकता है ताकि उनकी चिंताओं को आवाज देने के लिए सशक्त माध्यम बन सके।

सामुदायिक रेडियो के लाभ

भारत में सामुदायिक रेडियो की लहर 90 के दशक में ही पैदा हो गई थी, जब 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि 'रेडियो तरंगें जनता की संपत्ति हैं।' हालांकि, यह एक अच्छी खबर जरूर थी, लेकिन शुरूआती दौर में सिर्फ शैक्षिक स्तर पर ही ऐसे स्टेशनों को खोलने की इजाजत मिली थी। जिसके तहत चेन्नई स्थित अन्ना विश्वविद्यालय का अन्ना एफएम पहला कैंपस सामुदायिक रेडियो बना, जिसका प्रसारण 01 फरवरी 2004 से आरम्भ हुआ और जिसके तमाम कार्यक्रम आज भी विश्वविद्यालय के छात्र ही तैयार करते हैं। इसके प्रमुख लाभ निम्न है।

1. चूंकि प्रसारण स्थानीय भाषाओं और बोलियों में होता है, अत: लोग इससे आसानी से जुडने में समर्थ होते हैं।
2. सामुदायिक रेडियों, विकास कार्यक्रमों में लोगो की भागीदारी को मजबूत करने की क्षमता रखता है।

3. सामुदायिक रेडियों जहां प्रत्येक राज्य अपनी अलग भाषा और सांस्कृति विरासत का कोष लिये है वही स्थानीय कलाकारों को समुदाय के समक्ष उनकी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए मंच मुहैया कराता है।

4. कृषि, शिक्षा, समाज कल्याण, स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में सकारात्मक सामाजिक बदलाव व सशक्तिकरण के रूप में सामुदायिक रेडियो एक आदर्श उपकरण है।

हालांकि, इसकी असल अहमियत का पता काफी पहले से है। फिर भी आज के समय में इसकी महत्ता ओर बढ़ गई है। उदाहरण: (अ) सुनामी के वक्त इसका भरपूर इस्तेमाल हुआ, जब प्रसारण के तमाम हथियार ढीले पड़ गए थे इसी सामुदायिक रेडियो की वजह से ही अंडमान निकोबार द्वीप समूह में करीब 14 हजार लापता लोगों को आपस में जोड़ा जा सका था। (ब) यही नहीं केदारनाथ की तबाही के दौरान भी सामुदायिक रेडियो का लाभ देखने को मिला था, जब रेडियो हेनलवाणी, कुमाउ वाणी और मंदाकिनी की आवाज जैसे सामुदायिक रेडियो को सुनकर सेना के जवान संकट में फंसे लोगों का पता लगाते थे।

आपातकाल और त्रासदी के दौरान ही नहीं, सामान्य हालात में भी लोगों को अहम जानकारियां मुहैया कराने में भी सामुदायिक रेडियो अब तक काफी कारगर साबित हुआ है। इसके कुछ उदाहरण हैं: आंध्र में हैदराबाद से 100 किलोमीटर दूर पस्तापुर गाँव का सामुदायिक रेडियो और छत्तीसगढ़ का 'सीजीनेट स्वरा'। एक तरु पस्तापुर गाँव का सामुदायिक रेडियो गरीब महिलाओं के लिए खेतीबाड़ी की सूचना देने के साथ-साथ उनकी एक आवाज बन कर उभरा है, तो वहीं दूसरी तरफ 2000 सिटिजन जर्नलिस्ट की मदद से चलने वाला 'सीजी नेट स्वरा' सामुदायिक रेडियो की पहुंच आज छत्तीसगढ़ के 50 हजार लोगों से ज्यादा हो चुकी है। इनकी तरह देश में कई और भी सामुदायिक रेडियो हैं जो अपने समुदाय की आवाज बन चुके हैं और इसकी असीम शक्ति से आम लोगों को वाकिफ करा रहे हैं।

सामुदायिक रेडियो की समस्याएं

सामुदायिक रेडियो स्टेशनों के वजूद पर आज कई तरह के खतरे मंडरा रहे हैं। इनमें अन्य बातों के अलावा आमदनी और विज्ञापन की मुश्किलें शामिल हैं। कई स्टेशन पिछले कुछ सालों में बंद हुए हैं। ऐसे रेडियो स्टेशनों के लिए केंद्र के स्तर से फंड नहीं मिल पाता और इनके लिए फंड जुटाने को लेकर कई कड़े नियम भी हैं। ऐसे में सामुदायिक रेडियो के लिए आवेदन देना भले ही आसान हो, लेकिन लाइसेंस हासिल कर लेना और फिर उसे लंबे समय तक चला पाना किसी परीक्षा से कम नहीं है।

लेकिन, अगर देर-सवेर लाइसेंस मिल भी जाता, तो भी उनकी समस्याएं कम नहीं होती क्योंकि, 12 किलोमीटर के दायरे की सीमा तक में बंधे सामुदायिक रेडियो के साथ यह शर्त भी जुड़ी होती है कि उसके करीब 50 प्रतिशत कार्यक्रमों में स्थानीयता हो और जहां तक संभव हो, वे स्थानीय भाषा में हों। एक घंटे में 5 मिनट के विज्ञापनों की छूट तो है लेकिन प्रायोजित प्रोग्रामों की अनुमति नहीं है।

सामुदायिक रेडियो की प्रक्रिया

16 नवम्बर 2006 को भारत सरकार द्वारा एक नई कम्यूनिटी रेडियो नीति को अधिसूचित किया गया। इसके अनुसार गैरव्यावसायिक संस्थायें, जैसे स्वयंसेवी संस्थायें, कृषि विश्वविद्यालय, सामाजिक संस्थायें, भारतीय कृषि अनुसंधान की संस्थायें, कृषि विज्ञान केन्द्र तथा शैक्षणिक संस्था सामुदायिक रेडियो के लाइसेंस के लिए आवेदन कर सकती हैं। ऐसी पंजीकृत संस्थायें जो कम से कम तीन वर्षों से सामुदायिक सेवा के क्षेत्र में कार्य कर रही हों, सामुदायिक रेडियो के लाइसेंस के लिए आवेदन कर सकती हैं । इसके लिए कोई लाइसेंस फीस देय नहीं है। आवेदक को रु 2500- के मामूली प्रोसेसिंग शुल्क के अतिरिक्त रु 25,000- की बैंक गारंटी जमा करनी होती है। लाइसेंस मिलने पर इन्हें 100 वाट के एफएम ट्रांसमीटर के जरिए प्रसारण करने

की अनुमति मिलती है। इसका एंटेना अधिकतम 30 मीटर ऊँचाई तक स्थापित किया जा सकता है। ऐसे ट्रांसमीटर की पहुँच 12 किमी के घेरे तक सीमित होती है। केन्द्रों को अपने कार्यक्रम यथासंभव स्थानीय भाषा या बोली में, स्थानीय स्तर पर ही बनाने होते हैं। भारत में निजी एफएम और कम्युनिटी रेडियो पर अब तक समाचारों के प्रसारण की अनुमति नहीं हैं। एक घंटे के प्रसारण समय में पाँच मिनट के विज्ञापन बजाए जा सकते हैं। प्रायोजित कार्यक्रमों के प्रसारण की अनुमति नहीं है किन्तु राज्य अथवा केन्द्र सरकार से प्रायोजित कार्यक्रम प्राप्त होने की दशा में इन्हें प्रसारित किया जा सकता है। वर्तमान समय में 200 सामुदायिक रेडियों स्टेशन कार्य कर रहे है, जिनमें से 76 गैर-सरकारी संगठनों द्वारा, 109 शैक्षणिक संस्थाओं और 15 राज्य कृषि विश्वविद्यालय व कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा संचालित हो रहे हैं।

सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति

सामुदायिक रेडियो धीरे-धीरे एक नए जमाने के मीडिया का रूप लेता जा रहा है। अब जरूरत है तो बस इसे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंच बनाने की और सरकार को लाइसेंस प्रक्रिया को आसान करने की। लाइसेंस प्रक्रिया आसान होने से दूर दराज के गांवों में स्थित गैर-सरकारी संस्था भी आवेदन कर सकेंगे और समाज में जागरुकता फैलाने में एक सशक्त और कारगर माध्यम के तौर पर इस्तेमाल हो सकेगा।

□□

जैविक उत्पाद विपणन कर अधिक लाभ अर्जित करने के तरीके

अनिर्बान मुखर्जी[1], सत्यप्रिय[1], प्रेमलता सिंह[1], कृष्ण जोशी[2], शुभा[3] एवं एन.वी. कुंभारे[1]

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

[2]भाकृअनुप-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा

[3]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पादप अनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली

आधनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा पर्यावरण प्रदूषण को देखते हुए भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण मानव स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है। मानव जीवन के पूर्ण विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हों, शुद्ध वातावरण रहे व पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती की कृषि पद्धतियों को अपनाना होगा जोकि हमारे नैसकि संसाधनों वं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बिना समस्त जनमानस को खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सके तथा हमें खुशहाल जीवन जीने की राह दिखा सके।

जैविक खेती से होने वाले लाभ

कृषकों की दृष्टि से होने वाले लाभ

- भूमि की उपजाऊ क्षमता एवं फसलों की उत्पादकता में वृद्धि
- सिंचाई अंतराल में वृद्धि तथा सिंचाई की लागत मे कमी
- रासायनिक खाद पर निर्भर न होने से कृषि लागत में कमी

मृदा की कृष्टि से होने वाले लाभ

- जैविक खाद के उपयोग करने से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार
- मिट्टी की जल धारण क्षमता में बढ़ोत्तरी
- मिट्टी से पानी का वाष्पीकरण में कमी

पर्यावरण की दृष्टि से होने वाले लाभ

- भूमि के जल स्तर में वृद्धि
- मिट्टी, खाद्य पदार्थ और ज़मीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण मे कमी
- कचरे का उपयोग खाद बनाने में होने से बीमारियों में कमी

जैविक खेती से आर्थिक लाभ

जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णत सहायक है तथा जैविक खेती की विधि रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है, साथ साथ कृषक भाइयों को आय भी अधिक प्राप्त होती है। इसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक भाई अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में जैविक खेती का परिदृश्य

भारत में जैविक खेती की तरफ ध्यान 2004-05 में नया, जब जैविक खेती पर राष्ट्रीय परियोजना (एन.पी. ओ.फ.) की शुरूआत की गई। 2004-05 में जैविक

तालिका: जैविक और साधारण उपज के मूल्य में अंतर

क्र. सं.	उत्पाद	साधारण उपज की कीमत	जैविक उत्पाद की कीमत
1	शहद 250 ग्राम	130-140	250-300
2	मूंग की दाल 500 ग्राम	80-90	125-140
3	अरहर (तुअर) की दाल 500 ग्राम	90-100	130-140
4	सरसों का तेल 1 लीटर	90-120	250-300
5	लाल मिर्च 150 ग्राम	25-40	60-70
6	हल्दी 150 ग्राम	30-40	50-60
7	धनिया 150 ग्राम	35-45	80-90
8	लाल चावल	40-45	99-110
9	कदन्न	18-22	45-52
10	आलू	10-20	45-60
11	प्याज	22-35	52-65

खेती के अंर्तगत आने वाला क्षेत्र 42000 हेक्टेयर था। मार्च 2010 तक यह बढ़कर 10 लाख 80 हजार हेक्टेयर हो गया। इसके अतिरिक्त 34 लाख हेक्टेयर क्षेत्रों में जंगलों से फसल एकत्र की जाती है। इस प्रकार मार्च 2010 तक जैविक प्रमाणीकरण का कुल क्षेत्र 44 लाख 80 हजार हेक्टेयर था जिसमें पिछले 6 वर्ष में लगभग 25 गुना वृद्धि हुई है। जोती हुई जैविक भूमि में 7.56 लाख हेक्टेयर प्रमाणीकृत है, जबकि 3.2 लाख हेक्टेयर रूपान्तरण की प्रक्रिया में है।

जिन राज्यों में अच्छे तरीके से जैविक खेती की जा रही है, उनमें मध्य प्रदेश में 4.40 हेक्टेयर, महाराष्ट्र में 1.50 लाख हेक्टेयर और उड़ीसा में 95000 हेक्टेयर जमीन पर जैविक खेती हो रही है। फसलों में कपास एकमात्र ऐसी फसल हैं जिसकी खेती लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्र में की जाती है। इसके बाद चावल, दाल, तिलहन और मसालों की खेती होती है। भारत दुनिया में कपास का सबसे बड़ा जैविक उत्पादक है, और दुनिया में जैविक कपास के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत भारत में होता है।

920 उत्पादक समूहों के अंर्तगत आने वाले करीब 6 लाख किसान 56.40 करोड़ रूपये मूल्य के 18 लाख टन विभिन्न जैविक उत्पाद पैदा करते हैं। इन 18 लाख टन जैविक उत्पादों में से 561 करोड़ रूपये मूल्य के 54000 टन जैविक उत्पादों का निर्यात किया गया। पिछले कई वर्षों में जैविक उत्पादों का निर्यात लगतार बढ़ रहा है। 2006-07 में 301 करोड़ रूपये मूल्य का निर्यात हुआ, जो 2009-10 में बढ़कर 525.5 करोड़ हो गया।

जैविक खेती अपनाने वाले राज्य

नौ राज्यों ने जैविक खेती नीति का मसौदा तैयार किया है। इनमें से चार राज्यों, उत्तराखंड, नागालैंड, सिक्किम और मिजोरम ने 100 फीसदी जैविक खेती करने का अपना इरादा शोषित कर दिया है। सिक्किम जनवरी 2016 में पूर्णत: जैविक कृषि प्रदेश घोषित किया गया है जिससे वहाँ कृषि के लिये असीम संम्भावनायें विकसित हुई हैं। अन्य राज्यों ने भी जैविक खेती को बढ़ावा देने की योजनाएं बनाई हैं। हाल में बिहार ने वर्ष 2010-11 से 2014-15 की अवधि में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए 256 करोड़ रूपये की एक योजना को मंजूरी दी है। यह योजना शत-प्रतिशत राज्य की योजना है और इसका पूरा खर्च राज्य सरकार उठाई है। केन्द्र सरकार की सहायता वाली योजना इस योजना के अतिरिक्त होगी।

इस प्रकार देश की क्रेन्द्रीय एवं राज्य सरकारें खेती को बढ़ावा देने के लिये प्रयासरत है तथा किसानों को इसकी ओर प्रोत्साहित करने के लिये विभिन्न योजनायें चला रही हैं।

जैविक खेती में बेहतर विपणन की महत्ता एवं तरीके

उत्पादन करने की तरह उत्पाद बेचना भी महत्वपूर्ण कला है। ये कला कृषि व्यवसायियों तथा काश्तकारों के लिए इस कला की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। खासतर से छोटे कृषि व्यवसाय के लिये अगर काश्तकार बन्धु इस कला को जाने तो निश्चित रूप से उन्हें फायदा होगा। कृषि एक लाभकारी व्यवसाय है तथा इसे व्यवसायिक बनाकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। बाकी दूसरे व्यवसाय की तरह कृषि एक व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि एक व्यक्ति प्राय: बैंक में महीने में चार से पाँच बार जाता है, जीवन में एक या दो बार घर खरीदता है, हफ्ते कुछ बार ही इन्टरनेट का उपयोग करता है, परन्तु भोजन हर दिन जरूरी है। इस लिये कृषि उत्पाद निरन्तर रूप से उपभोक्ता को उपलब्ध कराया जा सकता है। इस आलेख में कृषि उपज बेचने के विभिन्न रणनीतिक तरीकों को वर्णित किया गया है।

कृषि उपज के प्रकार

कृषि विपणन को जानने से पहले हमें कृषि उपज के प्रकार के बारे में जानकारी लेनी चाहिए। बाजार में हमें विभिन्न कृषि उपज मिल जाती है, जैसे की अनाज एवं दलहन, अनाजों के बीज, फल-फूल, शाक-सब्जी, खाद, चारा, दुग्ध उत्पाद, औषधीय उत्पाद, कृषि यन्त्र एवं उपकरण और इसके अलावा विभिन्न मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे खाद्य तेल, भैषज तेल, पेय पदार्थ, फलों के रस, चटनी, आचार इत्यादि।

उपज को रूप के आधार पर दो प्रकार में विभाजित कर सकते हैं: प्रथम कच्चा उत्पाद और वित्तीय मूल्य वर्धित उत्पाद। कच्चे उत्पाद वो हैं जो फसल कटाई के बाद बाजार में उपलब्ध हो जाते हैं जैसे धान, गेहूँ आदि अनाज, दलहन, सब्जी, फूल इत्यादि। मूल्यवर्धित उत्पाद वह होता है जिसे कच्चे उत्पादों को उपभोक्ता की जरूरत के अनुसार रूपान्तरित करके उपलब्ध कराया जाता है। जैसे गेहूँ से आटा, रोटी, नूडल, इत्यादि। धान से चावल, चावल का भूसा, भूसा का तेल इत्यादि।

इसी प्रकार से उत्पादन के विधि को ध्यान में रखते हुए कृषि उत्पाद जैविक और अजैविक दो प्रकार के होते हैं। जैविक उत्पाद वो है जो कास्तकार अपने खेतों में गोबर खाद, केचँए की खाद आदि का उपयोग करके बिना कोई रासायनिक पदार्थ के उत्पादन करते हैं। अजैविक उत्पाद वह है जिसमें रासायनिक पदार्थ व उर्वरक आदि का प्रयोग होता है।

उत्पाद की उपयागिता

आर्थिक दृष्टिकोण से कोई भी उत्पाद की उपयागिता मूल रूप से चार प्रकार की होती है:

(क) उत्पाद की रूप उपयोगिता (मूल्य संबर्धन)

(ख) समय उपयोगिता

(ग) स्थान की उपयोगिता

(ङ) अधिकार उपयोगिता

(क) उत्पाद की रूप उपयोगिता (मूल्य संबर्धन) वह है जिस रूप में उत्पादक अपने उत्पाद संम्भावित ग्राहकों को प्रदान करता है। उदाहरण के रूप में: एक किसान अपने ग्राहकों कों गेहूँ एक अनाज के रूप में भी बेच सकता है अथवा गेहूँ का आटा बनाकर भी बेच सकता है तथा उसकी रोटी, बिस्किट, केक, आदि के रूप में भी बेच सकता है। ये देखा गया है अगर किसान अपने उत्पाद को मूल्यवर्धित करके ग्राहकों के प्रयोजन अनुसार प्रस्तुत करें तो कम लागत में अधिक लाभ हो सकता है।

(ख) समय उपयोगिता वह है जिससे समय अनुसार विभिन्न उत्पाद ग्राहकों के जरूरत के अनुसार उन्हे

बाजार में मिल सके, जैसे की बेमौसमी सब्जी, फल, फूल इत्यादि। समय उपयोगिता को अगर किसान ध्यान में रखें। तो भी अधिक मुनाफा कृषि व्यवसाय में हो सकता है। अक्सर हम देखते हैं बेमौसमी कृषि उत्पादों का बाजार में अधिक मूल्य मिलता है, इसके लिए किसान भाइयों को एक योजना बना कर काम करने की जरूरत है।

(ग) स्थान की उपयोगिता वह है जिससे ग्राहकों को दूर-दूर के उत्पाद नज़दीकी बाजार में उपलब्ध हो सकें, उदाहरण के रूप में कश्मीरी अखरोट अगर बैंगलौर या कोलकाता में मिले तो ग्राहक उसके लिये अधिक मूल्य देने को तैयार हो जाते हैं।

(ङ) अधिकार उपयोगिता वह है जो कोई कृषि उत्पाद का ग्राहकों द्वारा खरीदने के बाद उसके मालिकाना हक के रूप में उपयोगी हो। उदाहरणत: अगर यदि मुख्य रोड साइड पर या मुख्य बाजार में किसी व्यक्ति की खरीदी हुई जमीन हो तो वह उसके अधिकार उपयागिता में आता है।

कृषि क्षेत्र में अधिक लाभ अर्जित करने के तरीके

कृषि क्षेत्र में अधिक लाभ कमाने के लिये उत्पादकता में वृद्धि, कम लागत में उत्पादन, बेहतर मूल्य निर्धारण जैसे कई सारे विकल्प हैं। एक रणनीतिक तरीके से इन विकल्पों का उपयोग किया जाय तो काश्तकारों को बेहतर आय उपर्जित होगी।

जैविक उत्पाद बेचने के बुनियादी सिद्धांत

उत्पाद को बेचने के छ: बुनियादी सिद्धांत हैं। यह बाकी वस्तु की तरह जैविक कृषि उपज मे भी लागू होते हैं। अपने उपज की बिक्री को प्रभावी बनाने के लिए विक्रेता को निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए।

1. अपने ग्राहकों को सुनें। वह क्या चाहते हैं यह जाने और उसी तरह अपनी उपज की योजना तैयार करें।
2. अपने ग्राहकों की स्थिति को समझें। मान लीजिये कि आप गोभी के उत्पादक हैं और आप चाहते हैं कि दो से तीन किलोग्राम की एक गोभी। पर आज कल के परिवार छोटे होते हैं जिनमें 4 से 5 लोग रहते हैं तो उनके लिए एक किलो से डेढ़ किलोग्राम की गोभी उपयुक्त रहती है। तो वो अगर आप का उत्पाद लेंगे तो आधा इस्तेमाल करना होगा जिससे आधा खराब होने की सम्भावना है।
3. आप अपने ग्राहकों की जरूरत को पहचानें। ग्राहक और उपभोक्ता की जरूरत को ध्यान में रखते हुये अपने उत्पाद की योजना बनानी होगी। आप के निकटतम बाजार में अगर जैविक उत्पाद का प्रचलन तथा मांग है तो आप अगर जैविक उत्पाद करें तो आप का उत्पाद बिक्री हो जाए।
4. आप का उत्पाद अच्छा है इस का प्रमाण दें। मान लीजिये आप जैविक उत्पादों का विपणन कर रहे हैं तो अगर आप आपके उत्पादों का जैविक प्रमाणीकरण करा लेंगे तो यह प्रमाणित कर पायेंगे कि आप का उत्पाद सटीक है।
5. उत्पाद के मामले में एक अलग पहचान बनाएं। आपको उत्पाद को कुछ अलग पहचान देना हागा। आप के उत्पाद क्यों खास हैं यह ग्राहकों को बताना भी आवश्यक है।
6. लंबे समय के लिए अपने ग्राहकों के साथ संबंध बनाएं। झूठ और फरेब से अच्छा व्यवसाय की बुनियाद नहीं बन सकता। अगर आप को अच्छे से खेती करनी है तो आप को ग्राहकों का विश्वास तथा भरोसा जीतना होगा और लंबे समय तक संबंध बनाये रखना होगा।

कहाँ-कहाँ आप जैविक कृषि उत्पाद बेच सकते हैं

आप वितरक को या खुदरा विक्रेताओं को अपने उत्पाद बेच सकते हैं या सीधे उपभोक्ताओं को अपनी उपज बेच सकते हैं। आज कल लोग अच्छे खाने के लिए

तालिका १: कृषि के क्षेत्र में अधिक लाभ कमाने का विकल्प एवं रणनीति

विकल्प	रणनीति
उत्पादकता में वृद्धि	• मृदा स्वास्थ में सुधार
	• अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्में तथा नस्लों का प्रयोग
	• कृषि विज्ञान एवं पशुपालन में सर्व श्रेष्ठ अभ्यास को अपनाना
	• बेहतर चारा प्रबंधन
बेहतर मूल्य	• विपणन रणनीति बनाना
	• बाजार को ध्यान में रखते हुये फसल चयन करना
	• अच्छे कीमत पाने के लिए विधि पूर्वक कृषि करना
	• जोखिम प्रबंधन - फसल बीमा कराना
कम लागत में उत्पादन	• पूरक फसलों का प्रयोग अंत-फसल के रूप मे दलहनी फसलों का प्रयोग
	• एकीकृत खरपतवार प्रबंधन
	• बेहतर पशु चराई प्रबंधन
	• समय पर पशुओं का टीका करण
अन्य कारक	• वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को बदलें
	• कृषि के प्रति सकारात्मक रवैया बनाऐ रखें
	• दिशा और लक्ष्य निर्धारित करके योजना बनाएं
	• प्रशिक्षण से अपना कौशल वृद्धि करें
	• कुशल कृषि प्रबंधन करें

रेस्तरां में बहुत जाने लगे हैं। आप के निकट अगर कोई शहर है तो आप के लिए और एक आसान रास्ता यह है कि आप उसी शहर के रेस्तरां को लक्ष्य बनाइये। अगर आप समय पर ताजी शक-सब्जी बाजार से थोड़ा कम दाम में देंगे तो आप के समस्त उत्पाद का विपणन हो जाऐगा। इस के इलावा अगर आप के खेत के बगल से कोई सड़क जाती है तो आप खुद एक छोटा सा दुकान खोल कर अपनी खेत की ताजी सब्जियाँ आसानी से बेच सकते हैं।

विपणन की धारा

विपणन करने के लिए कुछ मूलभूत धाराओं को ध्यान मे रखना आवश्यक है। आप को यह सुनिश्चित करना होगा कि आप ने विधि पूर्वक उत्पादन किया है यानि कि कीटनाशकों और अन्य रसायनों के उपयोग के नियमों का पालन किया है। विपणन मे सफाई, शेडिंग पैकेजिंग ब्रांडिंग, लेब आदि एक धारा के रूप में करना चाहिए। यह आप के उत्पाद को दूसरे के उत्पाद से अलग करेंगे। अपने उत्पाद का उचित प्रलेखन आवश्यक है। यह खाद्य सुरक्षा योजना का पालन किया है या नहीं, मिट्टी और सिंचाई के पानी की स्थिति को सुनिश्चित किया है या नहीं, इस मे भारी धातुएं हानिकारक स्तर तक मौजूद हैं या नहीं। यदि आप जैविक उत्पाद बेच रहे हैं तो जैविक प्रमाणीकरण अनिवार्य है।

जैविक उत्पाद बेचने के लिए कुछ सुझाव

उत्पाद बेचने के लिए चार शब्दों का अर्थ आप को जानना होगा और उसे विपणन में आजमाना होगा। यह चार शब्द हैं: मूल्य, विज्ञापन, उत्पाद एवं स्थान। सटीक उत्पाद का सटीक स्थान में विज्ञापन एवं सटीक मूल्यांकन के माध्यम से उच्च स्तर का विपणन संभव है।

इसके अलावा सुचारू रूप से कृषि व्यापार करने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे:

- ग्राहकों के साथ एक लंबी अवधि के रिश्ते बनाएं।
- व्यावसायिक बनें।
- उत्पाद की गुणवत्ता से और ग्राहकों की उम्मीद के साथ कभी भी खिलवाड़ न करें।
- स्पष्ट मूल्य निर्धारण करें।
- व्यापार की एक योजना बनाएं।
- अपने उत्पाद तथा बाजार में विविधता लायें।
- सम्पर्क का दायरा बढ़ायें।
- एक अच्छा उत्पाद तथा सेवा प्रदान करने की कोशिश करें।
- एक विकसित विपणन योजना बनाएं और पालन करें।
- आशावादी बनें और लागत प्रयास करते रहें।

निष्कर्ष

जैविक खेती अपनाने का उद्देश्य है कि किसान को सम्मानजनक और सुनिश्चित आमदनी मिले, छोटी जोत भी सम्मानजनक रोजगार एवं जीवन दे सभी को पर्याप्त और शुरू भोजन प्राप्त हो इसके अलावा पर्यावरण सन्तुलन में भी जैविक खेती का योगदान है। जैविक उत्पाद की बिक्री के लिये फसल को अच्छे से साफ करें और मजबूती से पैक करके पैकिट के ऊपर या अन्दर अपना पता इत्यादि और फसल की विशेषता लिखें। बाजार धीरे-धीरे बनता है। जायज कीमत रखें, एक दम से दुगने भाव की आशा ना करें। अगर कुछ किसान आपस मे मिल कर एक समूह बनाकर जैविक खेती करे तो उत्पाद का जैविक प्रमाणीकरण अपेक्षाकृत आसानी से होगी तथा जोखिम भी कम रहेगा।

सफलता का कोई सरल उपाय नहीं है। सफलता एक निरंतर यात्रा है। याद रखिए आदमी विफल हो कर ही सफलता की राह पर चलता है। यदि आप बचपन में गिरने के डर से चलना बन्द कर देते तो कभी चलना नहीं सीखते। आप सफल हो जाएं कोशिश जारी रखिए क्योंकि हर कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती है।

□□

मिर्च में लगने वाले रोगों का समेकित प्रबन्धन

दिनेश सिंह
पादप रोग विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

भारत में, मिर्च (*कैप्सिकम फ्रूटेसेन्स*) की दो प्रजातियां जिसे लाल मिर्च और शिमला मिर्च के नाम से जाना जाता है, प्रमुखता से उगाई जाती है। इसके फल में कैप्सीसीन नामक रसायन होने के कारण, इसमें तीखापन होता है। इसका फल विटामिन ए (18 माइक्रोग्राम/100 ग्राम फल) और एस्कार्बिक अम्ल यानि विटामिन-सी (80 माइक्रोग्राम/100 ग्राम फल) का अच्छा स्रोत है। विश्व में भारत मिर्च का प्रमुख उत्पादक, उपभोक्ता एवं निर्यातक है। भारत में लाल मिर्च आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, ओडिशा, बिहार, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में प्रमुख रूप से उगाई जाती है। जबकि शिमला मिर्च हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में उगाई जाती है। लाल मिर्च की खेती 7.5 लाख हेक्टयर में की जाती है जिसका उत्पादन 13.4 लाख मैट्रिक टन होता है तथा उत्पादकता 1643 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर है। यद्यपि भारत में मिर्च का उत्पादन बहुत होता है लेकिन अन्य देशों की तुलना में उत्पादकता कम है। इसका प्रमुख कारण सिंचाई, पोषक तत्व की उपलब्धता तथा व्याधियों एवं कीटों का अधिक प्रकोप होना है। फसल उगाने के दौरान पौधों में बहुत से रोग लगते हैं जो कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं के द्वारा होते हैं। जो फसल उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। मिर्च में लगने वाले प्रमुख रोगों का संक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है।

१. श्यामवर्ण तथा फल विगलन

लक्षण: मिर्च में श्यामवर्ण तथा फल विगलन रोग के लक्षण की दो अवस्थाएं पायी जाती हैं- 1. पश्चमारी, 2. श्यामवर्ण तथा फल विगलन। पश्चमारी लक्षण में मुलायम टहनियों के शीर्ष से नीचे की ओर ऊतकक्षय दिखाई देती है तथा पूरा पौधा या शाखाएं सूखने लगती हैं। टहनियां पीली हो जाती हैं तथा बहुत से काले बिन्दु (कवक का एसरवुलाई) पौधे के ऊतकक्षयी भाग पर बिखरे हुए होते हैं। इस प्रकार के लक्षण तने पर भी देखे जा सकते हैं। श्यामवर्ण एवं फल विगलन मिर्च के पके फलों पर दिखाई देता है। फल के छिलके पर छोटे, काले, वर्तुल तथा हल्के धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। जैसे ही फल परिपक्व होता है, ये धब्बे बड़े होकर आपस में मिलकर फल के अधिकांश भाग को ढक लेते हैं। आर्द्र मौसम में ये धब्बे गुलाबी रंग के कवक के बीजाणु के झुण्ड से ढके होते हैं। रोग के बढ़ने से धब्बे फैल जाते हैं। संकेन्द्री चिन्ह के साथ काले कवक फलन (कवक का एसरवुलाई) बनते हैं। जब फल को काटकर खोलते हैं तो छिलके की निचली सतह पर कवक के छोटे, उठे हुए गोलाकर काले स्ट्रोमा के समूह पाये जाते है। बीज भी इस रोग से प्रभावित होते हैं तथा वे जंग लगे रंग के तथा सिकुड़े हुए होते हैं।

यह रोग *कोलेटोट्राइकम* की तीन प्रजातियों *को. कैप्सीकी, को. ग्लीयोस्पोरायड्स* और *को. पीपेरेटम* के द्वारा होता है। इनमें *को. कैप्सीकी* का प्रकोप अधिक

होता है और इससे फसल को सबसे अधिक नुकसान पहुंचता है। रोगकारक कवक पौधों के अवशेषों तथा संक्रमित बीजों में जीवित शेष रहता है तथा ये प्राथमिक संक्रमण के लिए मुख्य श्रोत है। द्वितीय संक्रमण हवा वाहक कोनिडिया के द्वारा होता है। इस रोग की तीव्रता पूर्ण नम मौसम में बढ़ जाती है। इस रोग के विकास के लिए सामान्यत: 26^0 सेल्सियस तापमान तथा स्वतंत्र जल या 100 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता अनुकूलतम होती हैं।

समेकित प्रबंधन: मिर्च का यह एक प्रमुख रोग है इससे फसल को बहुत अधिक नुकसान होता है। इस रोग का प्रबंध निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

- बुवाई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- रोगरहित पौधों से बीज प्राप्त करें।
- बीज का उपचार बेविस्टीन (0.1 प्रतिशत) से करें।
- एक साल का फसल-चक्र में टमाटर वर्गीय फसलों को सम्मिलित न करें।
- कवकनाशी जैसे बेविस्टीन (0.1 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), डाइफोलेटान (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव आवश्यकतानुसार खड़ी फसल में करने से लाभ होता हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे कवकनाशी जैसे प्रोक्लोरेज (0.125 प्रतिशत), डाइफेनोकोनाजोल (0.05 प्रतिशत) और टेबुकोनाजोल (0.05-0.1 प्रतिशत) का प्रयोग इस रोग की रोकथाम के लिए किया जा सकता है।

३. सरकोंस्पोरा पर्ण चित्ती

लक्षण: पत्तियों, तनों व फलों पर रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियों पर गोल या अण्डाकार, जलीय भूरे, काले फैले हुए धब्बे (5-10 मि.मी. व्यास) दिखाई देते हैं, जो बाद में आपस में मिलकर अंगमारी के लक्षण प्रदर्शित करते हैं। धब्बे किनारे पर भूरे रंग के तथा केन्द्र में हल्के धूसर रंग के होते हैं। पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती हैं। तनों एवं पर्णवृन्तों पर अनियमित आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग की तीव्रता बढ़ने पर, फल भी संक्रमित होते हैं तथा फल सड़ने लगते हैं। पत्तियों के गिरने से फसल को अधिक नुकसान होता है।

यह रोग *सर्कोस्पोरा कैप्सिकी* नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित पौधों के अवशेषों में कवकजाल या स्ट्रोमेटा के रूप में जीवित शेष रहता है। फल के संक्रमित होने पर, बीज में भी जीवित रहता है। कोनिडिया का विकास जीवित शेष स्ट्रोमेटा पर होता है जो कि प्राथमिक संक्रमण का मुख्य स्रोत है। इसका प्रसारण हवा या वर्षा के झोंकों से होता है। पत्तियों में संक्रमण होने पर, धब्बे बनते हैं जिससे रोगजनक के कोनिडिया बनते हैं, जो द्वितीय संक्रमण के लिए उत्तरदायी होते हैं। जब तापमान $20-25^0$ सेल्सियस के साथ सापेक्षिक आर्दता 95 प्रतिशत से अधिक होती है तो इस रोग का विकास अधिक तीव्रता से होता है।

समेकित प्रबंधन: इस रोग का प्रबंध निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधे के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- बुवाई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- 3-4 वर्ष का फसल चक्र अपनाएं।
- बीजों को बेविस्टीन (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करें।
- कवकनाशी जैसे बेविस्टीन (0.1 प्रतिशत), डाइफोलेटान (0.3 प्रतिशत), ब्लाइटाक्स-50 (0.3 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10-15 दिन के अंतराल पर फसल पर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त स्कोर (0.05 प्रतिशत), रोको (0.05 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर भी छिड़काव कर सकते है।

४. चूर्णिल आसिता

लक्षणः रोग के लक्षण पहले निचली पुरानी पत्तियों पर सफेद, हल्के धूसर रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। बाद में ये धब्बे ऊपरी पत्तियों तक फैल जाते हैं। ये धब्बे तनों, कलियों तथा फूलों पर भी दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर सफेद-धूसर रंग के धब्बे दिखाई देते हैं तथा इसके ठीक ऊपरी सतह पर पीले विक्षति के साथ केन्द्र में भूरे ऊतकक्षयी दिखते हैं। प्रभावित पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ जाती हैं। पत्तियां अपरिपक्व अवस्था में पौधों से गिर जाती हैं।

इस रोग के लिए कवक *लेवीलुला फैरीका* उत्तरदायी होता है। इस रोगकारक के बहुत से पोषक पौधे जैसे टमाटर, बैंगन, धनियां, चना, ग्वार, कपास, प्याज आदि हैं। रोगकारक, धान्य फसलों तथा जंगली पोषक पौधों पर एक फसल से दूसरे फसल के आने तक जीवित शेष रहता है। कवक हवा तथा वर्षा के झोंकों से एक पौधे से दूसरे पौधों पर फैलता है। कोनिडिया पोषक पौधों की सतह पर अंकुरित होता है और क्यूटीकिल को सीधा छेद करता है या रंध्र के द्वारा प्रवेश करता है। पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर कोनिडिया बनते हैं जो पौधे में द्वितीय संक्रमण करते हैं। कोनिडिया के अंकुरण के लिए $25-30^0$ सेल्सियस तापमान पर मदद करती है। 50 प्रतिशत से कम सापेक्षिक आर्द्रता रोग के फैलने में मदद करता है। पत्तियों पर स्वतंत्र होने पर कवक के कोनिडिया का अंकुरण रूक जाता है।

समेकित प्रबंधनः इस रोग का नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः

- पौधे को अधिक दूरी पर लगाएं।
- इस रोग से बचाव के लिए फब्वारा विधि से सिंचाई करें।
- बुवाई के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव करें।
- पौधों पर छिड़काव के लिए कवकनाशी जैसे वेटेबल सल्फर, कार्बेन्डाजिम, डीनोकैप, ट्राइडेमार्क, हेक्साकोनाजोल आदि का प्रयोग लाभदायक होता है।

६. जीवाणुज पर्ण धब्बा

लक्षणः रोग के लक्षण पत्तियों, तनों तथा फलों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों पर जलीय, वर्तुल या अनियमित आकार की विक्षति दिखाई देती है। ऊतकक्षयी का केन्द्र भूरा तथा किनारे पतले हरिमाहीन होते हैं। ये विक्षतियां बढ़कर 10 मि.मी. तक हो जाती हैं तथा इस प्रकार की विक्षितियां पत्तियों की ऊपरी सतह पर धंसी हुई तथा निचली सतह पर उभरी होती हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर, ये विक्षतियां आपस में मिल जाती हैं और अंगमारी की तरह के लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियां पीली होकर अपरिपक्व अवस्था में ही पौधे से गिर जाती हैं। तने पर विक्षति पतली लम्बवत और उठी हुई, हल्की भूरी तथा खुरदरी होती है। फल पर शुरू में विक्षति हरे धब्बे बनते हैं जो बाद में बड़े होकर भूरे हो जाते इसी तरह के धब्बे, फूलों, बीज पत्रें तथा पर्णवृन्तों पर भी दिखाई देते हैं।

यह रोग *जैन्थोमोनास यूवेसिकेटोरिया* नामक जीवाणु से होता है। यह मिर्च के अतिरिक्त टमाटर को भी संक्रमित करता है। रोगकारक बाह्य-आन्तरिक बीज उत्पन्न प्रकृति का है। यह जीवाणु पौधों के अवशेषों पर जीवित शेष में रहता है। इस जीवाणु का फैलाव बीज या पौध द्वारा होता है। पौधों में इस जीवाणु द्वारा संक्रमण $15-35^0$ सेल्सियस तापमान के बीच हो सकता है परन्तु अनुकूलतम तापमान $22-34^0$ सेल्सियस होता है। रोग का अधिकतम विकास जुलाई से सितम्बर के महीनों में होता है।

समेकित प्रबंधनः इस रोग का नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः

- मिर्च की खेती अच्छे जल निकास वाली मृदा में करें।
- फसल-चक्र में टमाटर वर्गीय फसलों को सम्मिलित न करें।

- खेत से खरपतवारों तथा टमाटर वर्गीय अन्य फसलों को निकाल दें।
- बुवाई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का ही चुनाव करें।
- फसलों की सिंचाई फब्वारे विधि से न करें।
- बीज को सोडियम हाइपोक्लोराइट के 1.3 प्रतिशत घोल में 1 मिनट तक डुबोकर रखें तथा छाया में सुखा लें।
- फसलों पर एग्रीमाइसीन-100 तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) के मिश्रण का छिड़काव करने से रोग का प्रकोप कम हो जाता है तथा फसल का उत्पादन बढ़ जाता है।

७. जीवाणुज म्लानि

लक्षणः इस रोग में शुरू में पौधे की पत्तियां दिन में अचानक मुरझाने लगती हैं लेकिन रात में सामान्य हो जाती हैं। बाद में रोग के बढ़ने से सम्पूर्ण पौधों में स्थाई म्लानि हो जाती है। संक्रमित पौधा हल्का पीला या पीला हो जाती हैं। नया संक्रमित पौधा तुरन्त मर जाता है लेकिन पुराने पौधों में पत्तियां मुरझा जाती हैं। पौधे एक तरफ या इसके कुछ भाग बदरंग हो जाते हैं तथा अन्त में म्लानि होकर मर जाते हैं। पौधे का संवहन भाग हल्का पीला या भूरे रंग का हो जाता है। संक्रमित पौधे तने या जड़ को काट कर साफ पानी भरे हुए गिलास में डालने पर पौधे से दुधिया सफेद रंग जीवाणविक स्राव निकलता है, जिससे गिलास का पानी दूधिया रंग का हो जाता है। इससे जीवाणुज म्लानि की पहचान कर सकते हैं।

यह रोग जीवाणु *राल्स्टोनिया सोलेनेसियेरम* रेस 1 नामक द्वारा होता है। टमाटर वर्गीय फसलों के अतिरिक्त बहुत से खरपतवारों के मूल परिवेशी, जड़ों के ऊपर तथा जड़ों के अन्दर में यह जीवाणु जीवित शेष के रूप में पाया जाता है। ये खरपतवारे इस प्रकार हैं- *सोलेनम नाइग्रम, सो. एन्यूवी, सो. टोरूवम, सो. जैन्थेकमिम, क्रोटान बोन्फ्लेन्डिएनम, यूफोरबिया हिर्टा, कोलोकेज़िया इस्कुलेन्टा, पोर्टलेका ओलेरेशिया, फील्लैन्थस निरूरी* तथा *पर्थिनियम* आदि। जीवाणु पौधों के अवशेषों तथा नम मृदा में जीवित शेष रहता है। यह जीवाणु पौधों में जड़ों से पिथ (मज्जा) में यांत्रिक/सूत्रकृमि या कीटों द्वारा चोटिल किए जड़ों या जड़ों में दरार से होकर प्रवेश करते हैं। जीवाणु जाइलम वेसेल्स में रहते हैं और पूरे पौधे में फैल जाते हैं। ये जीवाणु दो मृदु ऊतक कोशिकाओं के बीच के स्थान तथा मज्जा में फैल जाते हैं और कोशिकाभित्ति को विघटित कर देते हैं जिससे उस स्थान पर जीवाणु की कोशिकाएं मर जाती हैं। ये जीवाणु संक्रमित जड़ों तथा सड़े हुए पौधों से मृदा में वापस आ जाते हैं। यह जीवाणु 15-37^0 सेल्सियस तक तापमान पर जीवित रह सकता हैं परन्तु अनुकूलतम तापमान 35-37^0 सेल्सियस होता है। रोग का विकास प्रायः 20^0 सेल्सियस के तापमान से ऊपर होता है। क्षारीय मृदा में इस रोग का विकास कम होता है। इस रोग का प्रसारण सिंचाई जल या वर्षा के जल, संक्रमित पौधों एवं संक्रमित बीजों से होता है।

समेकित प्रबंधनः इस रोग का प्रबंधन करना काफी कठिन होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई भी रसायन पूर्णरूप से उपयोगी नहीं पाया गया है। फिर भी निम्नलिखित विधियां अपनाकर इस रोग के आपतन को कम किया जा सकता है।

- इसे रोग से ग्रसित मृदा में फसल न उगाएं।
- 2-3 साल का फसल-चक्र अपनाएं, जिससे धान्य फसलों को सम्मिलित करें।
- बुवाई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- नर्सरी को रोगरहित मृदा में उगाएं।
- मृदा का सौरीकरण करें।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे कन्धारी, सी.ए.-219, सी. ए.-33, मंजेरी, उज्जला, कुलार्ड, पी.पी.-9656-06, पी.पी.-977127, पी.पी.-977195-1 और पी.पी. -977635 तथा सूरजमुखी आदि को लगाएं।
- सूत्रकृमिनाशी दवाओं का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

८. मोजेक रोग

लक्षणः इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गहरे हरे और पीले रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं तथा पत्तियां चितकबरी हो जाती हैं। रोगी पौधों से निकलने वाली नई पत्तियां छोटी, मोटी तथा संकरी हो जाती हैं। पौधे छोटे रह जाते हैं तथा उन पर फल एवं फूल कम लगते हैं।

यह रोग मिर्च में कई प्रकार के विषाणुओं जैसे कुकुम्बर मोजेक वायरस, पोटेटो वायरस वाई, पेपर मोटिल वायरस, टोबैको इट्च वायरस, टोबैको मोजेक वायरस पोटेटो मोटिल मोजेक वायरस (टोबैको वायरस) के द्वारा होता है। कुकुम्बर एवं पोटेटो वायरस रस के अतिरिक्त यह रोग माहू के द्वारा स्थानान्तरण होता है। जिसमें *एफिस गोसिपी, माइजस परसिकी* प्रमुख हैं। टोबैको वायरस यांत्रिक साधनों जैसे कार्य करने वाले के हाथों, कपड़ों तथा औजारों द्वारा स्थानान्तरित होता है, परन्तु कोई कीट इस समूह के विषाणु को स्थानान्तरित नहीं करता है। टोबैको वायरस, संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा बीजों में रहता है।

समेकित प्रबंधनः इस रोग का प्रबंधन निम्न विधियों से किया जा सकता हैः

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- खरपतवारों को खेत में या खेत के आसपास न उगने दें।
- बुवाई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- मिर्च की फसल को टमाटर वर्गीय फसलों के साथ न लगाएं।
- ऑक्सीमेथिल डिमेटान या रोगर का (1 मि.ली. /लीटर पानी की दर से) फसलों पर छिड़काव करें।

१०. पर्ण कुंचन

लक्षणः संक्रमित पौधों की पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। पत्तियां छोटी, जो बाद में हल्की-पीली हो जाती हैं। पुरानी पत्तियां पपड़ी की तरह तथा भुरभुरी हो जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे छोटे होते हैं तथा उन पर फल लगना बन्द हो जाता है और यदि लगता भी है तो वह कुरूप हो जाता है।

मिर्च में पर्ण कुंचन रोग टोबैको लीफ कर्ल वायरस द्वारा होता है। यह विषाणु, तम्बाकू तथा मिर्च के अतिरिक्त दूसरे बहुत से पौधों को संक्रमित करता है, जिसमें टमाटर, चुकन्दर, पपीता, तिल, *सीमोप्सीस टेट्रागोनोलोबा (ग्वार),* फरास तथा *पिटुनिया हाइब्रिडा* प्रमुख हैं। यह विषाणु सफेद मक्खी कीट द्वारा स्थानान्तरित होता है। नम मौसम में इस रोग का फैलाव कम होता है।

समेकित प्रबंधनः इस रोग का प्रबंधन करना कठिन होता है। फिर भी निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करके इस रोग से फसल को कुछ सीमा तक बचाया जा सकता हैः

- रोग रोधी किस्मों जैसे पेरेनियल, बीजी-1, लोराई, पंजाब लाल, जे.सी.ए.-196, पंजाब सुर्ख, डी.सी. -18, पूसा सदाबहार, पन्त सी-2, जवाहर मिर्च-2, सूर्यमुखी तथा जापानी को लगाएं।
- निम्बेसीडीन (1 मि.ली./लीटर पानी) या नीम अलज (1.5 मि.ली./लीटर पानी) का प्रयोग दूसरे कीटनाशक के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।
- ट्राइजोफॉस, 40 ईसी (1.5 मि.ली./लीटर पानी), नीमार्क (5 मि.ली./लीटर पानी) आदि का एक के बाद एक का नर्सरी में पौध तथा मुख्य खेत में 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

□□

सामाजिक वानिकी हेतु उपयुक्त औषधीय पौधा गिलोय

ममता मीणा[1], मोती लाल मीणा[2] एवं राजेश सिंह[3]

[1]काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, जोधपुर (राजस्थान)-342003

[2]काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़ (राजस्थान)-306401

[3]एटिक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

गिलोय सम्पूर्ण भारतवर्ष में 1000 फीट की ऊँचाई तक में पाई जाने वाली एक बहुपयोगी झाड़ीदार लता है। भारतवर्ष के साथ श्रीलंका तथा म्यांमार के जंगलों में प्राकृतिक रूप में पाई जाने वाली इस बहुवर्षीय लता का तना काफी मांसल होता है जिसकी शाखाओं से अनेक पतले-पतले मूल निकलकर नीचे झूलते रहते हैं। इसकी लताओं पर पतली त्वचा (छिलका) होती है जिसे हटाने पर नीचे हरा मांसल भाग दिखता है। इसके पत्ते हृदयाकार तथा पान के पत्तों की तरह चिकने होते हैं। इसकी लताओं पर मटर के दाने के समान फल लगते हैं जो पहले तो हरे रहते हैं परन्तु पकने पर लाल हो जाते हैं। यद्यपि वर्षा ऋतु में इस पर भरपूर पत्ते आते हैं परन्तु सर्दियों में इसके अधिकांश पत्ते पीले पड़कर झड़ जाते हैं। औषधीय उपयोग हेतु मुख्यतया इसके तने अथवा बेल का उपयोग किया जाता है हालांकि इसके पत्ते भी काफी अधिक औषधीय उपयोग की वस्तु है परन्तु अधिकांशत: इसकी बेल को ही सूखे रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वैसे इसको हरी अवस्था में प्रयुक्त करना ज्यादा लाभकारी माना जाता है। इसी प्रकार यूं तो किसी भी प्रकार तैयार हुई गिलोय औषधीय उपयोग में लाई जाती है परन्तु नीम के पौधों पर चढ़ी हुई गिलोय की बेल का औषधीय महत्व दूसरों की अपेक्षा ज्यादा माना गया है।

विभिन्न भाषाओं में गिलोय के नाम

हिन्दी	:	गिलोय, गुर्च
अंग्रेजी	:	गुलंच
लैटिन	:	*टाइनोस्पोरा कार्डिफोलिया*
वानस्पतिक कुल	:	*मैनीस्पर्मेसी*

गिलोय के औषधीय उपयोग

गिलोय उन गिने-चुने औषधीय पौधों में शुमार है जिन्हें त्रिदोशनाशक माना जाता है। गिलोय मधु अथवा घी के साथ कफ के निवारण हेतु, गुड़ के साथ मलबद्धता हेतु, खांड के साथ पित्त निवारण हेतु, अरण्डी के साथ वायु हेतु तथा सौंठ के साथ आमवात के निवारण हेतु प्रयुक्त की जा सकती है।

गिलोय के सत्व की औषधीय उपयोगिता से तो सभी परिचित है। इसके साथ-साथ परम्परागत औषधीय उपयोग में गिलोय तथा शतावरी का स्क्वाश श्वेतप्रदर में, गिलोय तथा ब्राह्मी का उपयोग दिल की धड़कन के नियंत्रण में, गिलाय, ब्राह्मी तथा शंखपुष्पी का चूर्ण आंवले के साथ रक्तचाप नियंत्रण हेतु, गिलोय तथा सारिवा के स्क्वाश का उपयोग रक्त विकार दूर करने में तथा गिलोय एवम् अश्वगंध को दूध में पकाकर बंध्यत्व दूर करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। गिलोय में पाए जाने वाले प्रमुख तत्व है:- ग्लुकोसाइन, गिलोइन, गिलोइनिन, गिलोस्टेराल तथा बर्बेरीन आदि। हालांकि अभी तक इसकी प्राप्ति अधिकांशत: जंगलों अथवा प्राकृतिक स्रोतों से ही होती है परन्तु सामाजिक वानिकी में इसकी खेती को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।

गिलोय के लाभकारी उपयोग

- गिलोय लीवर के निर्माण के लिए बहुत उपयोगी होती है।
- इसका उपयोग कैंसर बीमारी के नियंत्रण में अधिक किया जा रहा है।
- मधुमेह रोग में इसके तने का काढा बनाकर पीने से लाभ मिलता है।
- गिलोय का रस निकालकर उसको पीने पर गर्मी में लू से बचा जा सकता है।
- गिलोय के तना को बारीक पाउडर बनाकर गर्म पानी से लेने पर सर्दी, जुखाम का नियंत्रण किया जा सकता हैं।
- बच्चों में बुखार व खासी होने पर गिलोय का काढा पिलाने पर आराम मिलता है।
- चर्म रोगो से सम्बन्धित बिमारीयों के नियंत्रण के लिए गिलोय का रस प्रयोग करने पर आराम मिलता है।
- इसका काढा अस्थमा के रोगियों को पिलाने पर आराम मिलता है।
- महिलाओं में स्वेतप्रदर रोग के नियंत्रण में उपयोग लिया जाता हैं।
- गिलोय की जड़ों को सुखाकर पाउडर बनाकर उसका काढा बनाकर रोगी को पिलाने से पिलिया रोग पर नियंत्रण किया जा सकता है।
- हृदय सम्बंधित बिमारीयों के नियंत्रण में इसका उपयोग किया जाता है।

गिलोय की कृषि तकनीक

गिलोय की खेती के प्रमुख पहलू निम्नानुसार है -

फसल की अवधि

यूं तो गिलोय एक बहुवर्षीय लता है परन्तु लगाने के दूसरे वर्ष से प्रतिवर्ष इसकी लता को काट कर उपज प्राप्त की जा सकती है। अगले वर्ष लताऐं पुनः प्रस्फुटित हो जाती जिनसे आगे फसल काफी वर्षों तक चलती रहती है।

जलवायु

गर्म तथा आर्द्र क्षेत्रों की जलवायु इसकी खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त है वैसे यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में उगाई जा सकती है। गिलोय की लता अधिक गर्मी में भी हरी भरी रहती है। जिन क्षेत्रों में अधिक गर्मी पड़ती हैं वहां पर गिलोय के पौधे छायादार शेड का भी काम करते हैं।

भूमि

जलनिकास की पर्याप्त व्यवस्था वाली जीवाष्म युक्त किसी भी प्रकार की मिट्टी में इसे उगाया जा सकता है। गिलोय के पौधे को किसी प्रकार की मृदा जो खेती योग्य नहीं हो उसमें भी आसानी से उगाया जा सकता है। गिलोय का पौधा लवणीय, क्षारीय, तथा कंकरीली पथरीली जमीन में भी आसानी से पनपता है। इसका पौधा 9.4 पी.एच. वाली भूमि पर भी उगाया जा सकता है।

बिजाई की विधि

व्यावसायिक स्तर की खेती के लिए गिलोय की पुरानी लताओं से 6 से 9 इंच लंबाई की बेल काटकर नर्सरी में पॉली बैग्स में तैयार इसकी कलम की जाती है। 10 सप्ताह के पौधे हो जाने पर खेत में 1 x 1 फीट के गड्ढे खोदकर इन्हें इन गड्ढों में रोपित कर दिया जाता है। वैसे बीजों से भी लगाया जा सकता है।

लताऐं चढ़ाने की व्यवस्था

एक आरोही लता होने के कारण या तो गिलोय का रोपण किसी पूर्व में स्थापित पौधे के पास किया जाता है अथवा फैन्सिंग पर किया जाता है। खेत में लगाने पर इसके आरोहरण की व्यवस्था की जानी आवश्यक होती है। गोचर भूमि में इसके पौधों को दूसरे पौधों पर चढ़ाया जाता है जिससे पशुओं को गर्मी के मौसम में छाया व ठण्डक मिलती है।

औषधी संग्रह काल

गिलोय सत्व निर्माण के लिये गिलोय काण्ड (तना) का संग्रह जनवरी से लेकर मार्च तक करना उपयुक्त है। इस समय काण्ड पत्रविहीन हो जाता है तथा सत्व की मात्रा अच्छी निकलती है। लताओं के नीचे का जो भाग रह जाता है उससे अगले मानसून में पुनः लताऐं प्रस्फुटित हो जाती है जिनसे अगले वर्ष की फसल तैयार हो जाती है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है तथा एक बार रोपित कर दिए जाने के उपरान्त कई वर्षों तक लगातार गिलोय की फसल ली जा सकती है। यदि बीच में कुछ पौधे सूख जाएं तो उनके स्थान पर नये पौधे रोपित कर दिये जाते है। बेलों को चढ़ाने हेतु बनाया गया स्ट्रक्चर कई वर्षों तक निरन्तर काम देता रहता है।

लताओं की कटाई अथवा लताओं का संग्रहण

शीतकाल में गिलोय के पत्ते पीले हो कर गिरने लगते हैं। फलतः जनवरी से मार्च माह के बीच में इसकी बेलों को (नीचे एक फीट छोड़कर) काटकर उनको छोटे-छोटे के रूप में सुखा दिया जाता है। प्रायः एक एकड़ की खेती से लगभग 3 से 4 क्विंटल सूखी लताऐं प्राप्त की जाती हैं जिनका बाजार भाव लगभग 15 से 20 रूपये प्रति किग्राम तक रहता है। स्थानीय बाजार के साथ-साथ दिल्ली की खारी बावली, बैंगलोर, हरिद्वार तथा कलकत्ता एवम् मुम्बई की मंडियों में भी इसकी मांग रहती है।

गिलोय का काढ़ा बनाने की विधिः गिलोय का काढा बनाने में प्रयुक्त होने वाली सामग्री व उसकी मात्रा

सामग्रीः काढ़ा एक व्यक्ति के लिए

गिलोय तना	:	10 सें.मी. लम्बा
तुलसी पत्ता	:	2-4
अदरक/सोंठ	:	4-7 ग्राम
दालचीनी	:	2-3 ग्राम
आंवला	:	2-3 फल (ताजा)
शहद	:	2 चम्मच

गिलोय अदरक, दालचीनी, तुलसी पत्ता, सभी को मिलाकर कूट लें तत्पश्चात इस मिश्रण को स्टील के बर्तन में एक गिलास पानी डालकर गर्म करें। जब बर्तन का पानी उबलकर आधा हो जाये तो उसे उतार कर थोड़ा ठंडा होने पर उसमें आंवला रस/चूर्ण मिला दें तथा उसे छान लें। तैयार काढें में शहद मिला कर खाली पेट सुबह शाम को सेवन करने से शरीर निरोगी रहता है।

सावधानियां

गर्भवती व स्तनपान करा रही महिलाएं इसका सेवन न करें। क्योंकि यह रक्त की शर्करा को कम करता है, अतः मधमेह रोगी समय-समय पर शुगर जाँच करवाने के पश्चात् ही इसका सेवन करें।

□□

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन (आई.पी.एम.)

सुरेन्द्र राम, समीर कुमार पांडेय एवं अनिल कुमार
प्रसार निदेशालय, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद (यू.पी.)-224229

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी एक-तिहाई जनसंख्या कृषि पर आधारित है, लेकिन रासायनिक खादों के अंधाधुंध प्रयोग से उत्पादन में दिनों-दिन कमी हो रही है तथा मृदा उर्वरता स्तर गिरता जा रहा है, जबकि हर वर्ष अनेक कीट, रोगों, चूहों एवं खरपतवारों से फसलों की उपज पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन समस्याओं में धान की बाल काटने वाला सैनिक कीट, धान की गंधी कीट, चने व अरहर का फली बेधक, मूंगफली का सफेद गिडार, सरसों का माहूँ, आम का फुदका, आलू का पछेती झुलसा, मटर का बुकनी रोग, टमाटर एवं भिण्डी का मोजैक, अरहर का बंझा रोग और गेहूं का मामा आदि प्रमुख समस्याएं हैं।

रासायनिक पदार्थों के निरंतर प्रयोग से कई कीटों में उनके उपयोग से कई कीटों में उनके विरूद्ध अवरोध पैदा हुआ। साथ ही वातावरण में उपस्थित परजीवी कीट समाप्त हो रहे हैं, जिससे जहाँ पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है, वहां इन रसायनों का बुरा प्रभाव उत्पाद तथा मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। इन समस्याओं के प्रभावी निदान हेतु अब जिस पद्धति पर जोर दिया जा रहा है, उसको एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन (आई.पी.एम.) कहा जाता है। इस पद्धति में कीटों, रोगों और खरपतवारों आदि के नियंत्रण के बजाय अनेक प्रबंध की बात की जाती है। वास्तव में हमारा उद्देश्य किसी भी जीव को हमेशा के लिए नष्ट करना नहीं है, बल्कि ऐसे उपाय करने से है जिससे उनकी संख्या/घनत्व सीमित रहे और उनसे आर्थिक क्षति न पहुंचे।

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन का उद्देश्य

1. रसायन रहित नाशीजीव के नियंत्रण एवं अन्य विधियों का सामूहिक या आवश्यकतानुसार उपयोग करके नाशी जीवों के वृद्धि को आर्थिक क्षति स्तर की सीमा से नीचे बनाए रखना।
2. कीटनाशी रसायनों का कम से कम उपयोग करके पर्यावरण संतुलन को संरक्षित बनाए रखना।
3. नाशीजीव नियंत्रण के लिए जो साधन अपनाए जाएं वह न केवल प्रभावी हों, बल्कि कम खर्चीले भी हों।
4. पर्यावरण एवं वातावरण को प्रदूषित होने से बचाना।

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन के सिद्धांत

1. फसलों की बुआई से लेकर कटाई तक साप्ताहिक निगरानी करके मित्र कीट एवं शत्रु कीटों के बारे में जानकारी रखना।
2. कीट, रोग एवं खरपतवारों के नियंत्रण के लिए उन्हीं तरीकों को अपनाना, जिससे वातावरण प्रदूषित न हो।
3. एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन के तरीकों को सही समय पर अपनाकर नाशीजीवों को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखना।
4. रसायनिक पदार्थों का उचित मात्रा में उसी समय प्रयोग करें, जब कीटों एवं रोगों के प्रकोप की सीमा आर्थिक क्षति स्तर को पार रही हो।

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन की विधियां

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन की विधियां निम्नलिखित हैं:-

(अ) सस्य क्रियाएं (कर्षण क्रियाएं)

1. गर्मी के मौसम में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर उसमें मौजूद कीटों की विभिन्न अवस्थाओं को नष्ट करना चाहिए।
2. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
3. बीज शोधन कर समय से बुआई करना चाहिए।
4. स्वस्थ एवं रोगरोधी प्रजातियों की बुआई करना चाहिए।
5. नर्सरी समय से एवं ऊँचाई पर लगाना चाहिए।
6. पौधे से पौधे एवं लाइन से लाइन की दूरी संस्तुतियों के आधार पर रखनी चाहिए।
7. नर्सरी की पौध की जड़ों को शोधित करके रोपाई करना चाहिए।
8. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
9. सिंचाई का समुचित प्रबंध करना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार ही खेत में सिंचाई करनी चाहिए।

(ब) यांत्रिक नियंत्रण

1. खेतों से समूह में दिये गए अंडों एवं उपस्थित सूड़ियों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए।
2. कीट एवं रोग ग्रसित पौधों के प्रभावित भाग को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए। यदि पूरा पौधा प्रभावित हो तो पौधे को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
3. हिस्पा ग्रसित पौधों से पत्तियों का ऊपरी हिस्सा काट देना चाहिए।
4. केसवर्म की सूड़ियों को रस्सी द्वारा पानी में गिराकर नष्ट कर देना चाहिए।
5. फेरोमोन ट्रेप (गन्धपास) खेतों में लगाकर कीटों का आंकलन करना तथा समूहों में नर पतंगों को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
6. लाइट ट्रेप (प्रकाश प्रपंच) खेतों में लगाकर कीटों का आंकलन करना तथा समूहों में नर पतंगों को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

(स) जैविक नियंत्रण

1. परभक्षी एवं परजीवी कीटों को बाहर से लाकर खेत या फसल में छिड़काव कर देना चाहिए।
2. खेत या फसलों में पहले से ही मौजूद परभक्षी एवं परजीवी कीटों को संरक्षण देना चाहिए।
3. शत्रु एवं मित्र कीट (2:1) कीटों का अनुपात बनाए रखना चाहिए।

(द) रासायनिक नियंत्रण

1. कीटनाशक रसायनों का प्रयोग अंतिम उपाय के रूप में करना चाहिए।
2. सुरक्षित एवं संस्तुत रसायनों का उचित समय पर निर्धारित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।
3. रसायनों का प्रयोग करते समय सावधानियां अवश्य बरतें।
4. खरपतवार नाशकों का प्रयोग बताये गये निर्देशों के अनुसार करना चाहिए।

अत: संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उपरोक्त विधियों को अपनाकर किसी भी जीव को हमेशा के लिए नष्ट न करके बल्कि उक्त उपाय अपना करके नाशीजीवों की संख्या/घनत्व सीमित करके खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है तथा साथ ही साथ पर्यावरण एवं वातावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

□□

लेखकों से...

1. अपनी तकनीकी या अनुसंधान की जानकारी स्वच्छ एवं पठनीय साधारण हिन्दी में हाथ से लिखकर या टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क रु. 80/- मनिआर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली - 110012

फोनः 011-25841670, 25846233, 25841039

पूसा एग्रीकॉम : 1800 11 8989 (निःशुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

भा.कृ.अ.सं. पुस्तकालय
I.A.R.I. LIBRARY

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स वीनस प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स बी-62/8, नारायणा इन्डुस्ट्रियल एरिया, फेस-2, नई दिल्ली-110028 द्वारा मुद्रित

फोन: 45576780 मोबाईल: 9810089097